CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीहरीभक्तिरसामृतसिन्धोर्मूलकारिका

34/33

आम्नाय-ग्रन्थालय
भारतनिधि, काशी
वाराणसी-5

यालय
राणसी-५
33

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उ. 4/33

आम्नाय-ग्रन्थालय,
[illegible]
[illegible]-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्रव्य	गुण
पृथवी १४	स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, यत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, रूप, रस,
जल १४	पृथवी के पहले १३ गुण और स्नेह ॥
अग्नि ११	पृथवी के पहले ८ गुण, रूप, यत्न, द्रवत्व ॥
वायु ९	" " " यत्न ॥
आकाश ६	संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, शब्द ॥
काल ५	संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग ॥
दिक् ५	" " "
मन ९	परत्व, अपरत्व, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व संयोग, विभाग, यत्न ॥
आत्मा १४	बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, संस्कार, धर्म, अधर्म ॥
ईश्वर ८	संख्या, बुद्धि, इच्छा, यत्न, परिमाण, संख्या, पृथक्त्व, संयोग, विभाग

See p. 191 et seq of 'Bhasha Parichada' for an understanding of 'पाक' & संयोग विभाग etc.

आम्नाय-ग्रन्थालय
काशीमठ, काशी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदान्त में 'ईश्वर' का स्वरूप

पंच कोश जीव के प्रत्यगात्मा के आच्छादक हैं। ईश्वर के 'ब्रह्म' के रूप के आच्छादक नहीं क्योंकि ईश्वर निरावरण है। उस के स्वरूप का कोई आवरण नहीं है।

ईश्वर के पंच कोश

(१) आनन्दमय कोश ॥ समष्टि अज्ञान रूप माया ईश्वर का "कारण शरीर" है। यह उस का आनन्दमय कोश है।

समष्टि जीवों के समष्टि सूक्ष्म शरीर को "हिरण्यगर्भ" कहते हैं। यही ईश्वर का सूक्ष्म शरीर है। इस में

(२) विज्ञानमय कोश ॥ समष्टि बुद्धिमय महत्तत्वरूप और उसका अभिमानी ब्रह्मरूप ईश्वर की बुद्धि + दिक्पाल वायु, सूर्य, वरुण, और अश्विनीकुमार यह जीवों की पांच समष्टिरूप ज्ञानेन्द्रियां मिलकर ईश्वर का 'विज्ञानमय' कोश है ॥

यह 'ब्रह्मा' ही 'आदि कवि' है जिसका हृदय में भगवान ने श्रीमद्भागवत संचार किया था ॥

(३) मनोमय कोश ॥ यह उपरोक्त पांच ज्ञानेन्द्रियों की समष्टि तथा समष्टि मनो मिलकर ईश्वर का मनोमय कोश है।

(४) प्राणमय कोश ॥ समष्टि जीवों की कर्मेन्द्रियों के अभिमानी देवता अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति और मृत्यु (यम) + समष्टि प्राण या वायु का अभिमानी देवता ईश्वर का प्राण मिल कर उस का प्राणमय कोश कहलाता है ॥

(५) अन्नमय कोश ॥ समष्टि स्थूल सृष्टिरूप विराट ईश्वर का स्थूल शरीर है, इसे उस का अन्नमय कोश कहते हैं ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन = जिस इन्द्रिय से सुख दुःख की अनुभूति होती है।
इन्द्रियों के विषय के रूप का आदान है।

बुद्धि = सब व्यवहार का कारण, ज्ञान।
व्यवहार = शब्द प्रयोग (अतः ज्ञान का लक्षण)।
बुद्धि दो प्रकार की है — ज्ञान दो प्रकार का है — (1) स्मृति। जो ज्ञान केवल संस्कार से उत्पन्न होता है। संस्कार के नाश होते ही स्मृति भी नष्ट हो जाती है।
(संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः)

(2) अनुभव। स्मृति से भिन्न ज्ञान। अर्थात् संस्कार से उत्पन्न न होने वाले ज्ञान को अनुभव कहते हैं। यह दो प्रकार का है —
(i) यथार्थ — — इसे प्रमा भी कहते हैं। जैसे चांदी में चांदी का ज्ञान।
(ii) अयथार्थ। — जो विषय जैसा है उससे भिन्न ज्ञान। अप्रमा। जैसे अंधेरे में पड़ी रस्सी में सर्प का ज्ञान होना।

यथार्थ अनुभव। शब्द — द्वारा होता है (अनुमान, प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा यथार्थ ज्ञान नहीं होता — यद्यपि नैयायिक लोग ऐसा नहीं मानते)।
आप्तपुरुष का वाक्य ही शब्द प्रमाण है। आप्तपुरुष = सत्यवक्ता,
वाक्य में पदों का समूह होता है।
पद = जिसमें शक्ति है।
शक्ति = ईश्वर संकेत द्वारा पद का जो अर्थ निश्चित होता है उसे शक्ति कहते हैं। अभिप्राय ... पद ... संकेत ... ...

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

[illegible] है।
लक्षणा प्रयोजनवश की जाती है। लक्ष्यार्थ का [illegible]
[illegible] प्रयोजन उपपन्न है। (अर्थात तात्पर्य की उपपत्ति)।
लक्षणा 3 प्रकार की होती है — जहत् अजहत्, जहत् अजहत्।

जहत् = लक्ष्य। लक्षणाशब्द अपने वाच्यार्थ को छोड़ देता है।

अजहत् = लक्षणा शब्द अपने वाच्यार्थ को न छोड़कर कुछ भिन्न अथवा अतिरिक्त अर्थ प्रकट करता है। इसको उपादान लक्षणा भी कहते हैं।

जहत् अजहत् = उपरोक्त दोनों प्रकार के अर्थ प्रकट करने की शक्ति।

वृत्ति: 3 प्रकार की है —
अभिधा। मीमांसा अनुसार, शाब्दी भावना।

लक्षणा = यह दो प्रकार की होती है निरूढ़ और प्रयोजनवती।
निरूढ़ = प्रसिद्ध। अर्थात जिसमें गृहीत अर्थ रूढ़ हो गया है। और प्रयोजनवती वह है जिसमें गृहीत अर्थ प्रयोजन वश व्यवहृत हुआ हो। या जहाँ वक्ता ने प्रहण किया गया है।

व्यंजना = इसके शब्द के या वाक्य के अर्थ से भिन्न अर्थ प्रकट करने के लिए किसी अन्य [illegible] बोध होता है।

P.53 धर्म = वेदनिर्दिष्ट कर्म से उत्पन्न अदृष्ट।
अधर्म = वेदनिषिद्ध " " "

P. 8 आत्मा = ज्ञान का अधिकरण (रहने का स्थान)।

P. 36 कर्म = संयोग के अभिन्न होकर भी संयोग का असमवायी कारण कर्म है। असमवायी = समवायी भिन्न।

P. 8 लिङ्ग = प्राणी आदि जो व्यवहार की हेतु हैं।
उदयाचल सोमदेवता जो लिङ्ग हैं उन्हें प्राणी कहते हैं।
[illegible] " " प्रत्यक्षी
मेरु " " " अस्तेयी सोमदेवी
मेरु से अभिन्न " " मारवाड़ी "

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0: In Public Domain. Digitization by eGangotri

पदार्थ = [illegible] की आकृति और आदि ॥ "पदार्थ" ७ है अर्थात् क्यों
कि यह है कि (१) नित्यत्व (२) नामत्व (Knowledge) (Expression of word)
कुछ है इन ७ के अन्तर्गत है, इन्हें छोड़कर और कुछ नहीं। इन के
द्रव्य, गुण, कर्म, यह 'सत्ता' वाचक है (Existence) अर्थात् जो कुछ
दृष्टि के अन्तर्गत है। बाकी ४ पदार्थ "ज्ञान" (कारण कार्य का बोध,
[illegible] है। 'समवाय' नित्य सम्बन्ध, अनन्त सम्बन्ध प्रवय का सम्बन्ध (अ
[illegible] कारण द्रव्य" है। यह जो द्रव्य है वाक्य का अर्थ
[illegible] करने वाले हैं। 'कर्म' और 'गुण' तो असमवायी कारण
अर्थात् [illegible] को आकृति नहीं देसकते। यह सिद्धान्त (द्र
व्याकरणों को भी [illegible] है। "यथा — द्रव्यगुणा पदार्थे तु द्रव्ये [illegible]
पद ज्ञान कैसे होता है? द्रव्यगुणसमवाय द्रव्यमतः [illegible]

पदज्ञानं तु करणं, द्वारं तत्र पदार्थधीः।
शब्दबोधः फलं तत्र, शक्तिधीः सहकारिणी॥
(सं. डा. [illegible]

(Knowledge of words)

अर्थात् पद ज्ञान तो करण ही है (instrument of verbal comprehension)
अर्थ ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्दों के बिना भी अर्थ बोध हो सकता है
जैसे कि मन ही मन में उच्चारण करना या gesture से बिना प्रकट करना,
या लिख कर अभिप्राय बताना। अर्थ ज्ञान तो 'स्मृति' द्वारा होता है नहीं तो
यम 'शब्द स्मृति' से ही लोगों को अर्थ का बोध हो जाया करता ~~[illegible]~~ पद ज्ञान म
रहते रहे। ऐसी अवस्था में तो शब्दार्थ ज्ञान "वृद्धि" (शब्द की वृद्धि) द्वारा ही
मानना पड़ेगा। यह वृद्धि 'शक्ति' या 'लक्षणा' होती है। 'शक्ति' का
इसीलिये 'महत्व' है क्योंकि जब तक 'शक्ति' मालूम न हो उस का
सम्बन्ध दूसरे शब्दों से नहीं जाना जा सकता। यह 'शक्ति' ईश्वरकृत हो
सकती है और किसी की इच्छा से भी हो सकती है। व्याकरण पद
द्वारा ही गई शक्ति ईश्वर अतिरिक्त दूसरों की इच्छा से ही जाती है
परन्तु वेद में जो शब्दों का मुख्य अर्थ है वही ईश्वर कृत है। इस
अतिरिक्त कोष, निरुक्त, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और
शब्द स्वातन्त्र्य आदि द्वारा जो मनुष्य शक्ति देते हैं वह ईश्वरकृत नहीं
होती। शब्द शक्ति 'आप्तोपदेश' द्वारा ही जानी जा सकती। 'शक्ति'
Comparison में पड़ते हैं।

308.55
307
313.55
51

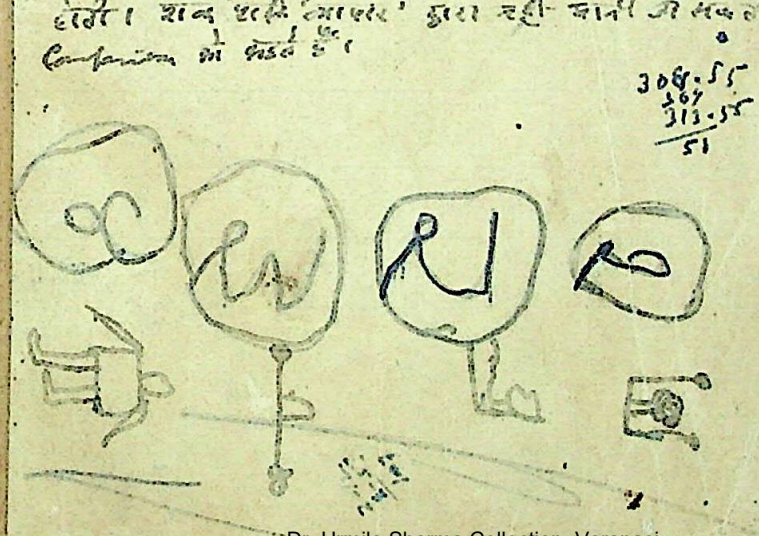

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

294

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
वाराणसी, काशी

श्रीश्रीगौरकृष्णः शरणम् ।

श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धो-

मूलकारिकामात्रभागः—

तत्र

भक्तिभेदनिरूपकाख्ये पूर्वभागे

प्रथमलहरी—
भक्तिसामान्या

अखिलरसामृतमूर्त्तिः प्रसृमररुचिरुद्धतारकापालिः ।
कलितश्यामाललितो राधाप्रेयान् विधुर्जयति ॥ १ ॥
हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्त्तितोऽहं वराकरूपोऽपि ।
तस्य हरेः पदकमलं बन्दे चैतन्यदेवस्य ॥ २ ॥
विश्राममन्दिरतया तस्य सनातनतनोर्मदीशस्य ।
भक्तिरसामृतसिन्धुर्भवतु सदाऽयं प्रमोदाय ॥ ३ ॥
भक्तिरसामृतसिन्धौ चरतः परिभूतकालजालभियः ।
भक्तमकरानशीलितमुक्तिनदीकान्नमस्यामि ॥ ४ ॥
मीमांसकबडवाऽग्नेः काठिनामपि कुण्ठयन्नसौ जिह्वाम् ।
स्फुरतु सनातन ! सुचिरं तव भक्तिरसामृताम्भोधिः ॥ ५ ॥
भक्तिरसस्य प्रस्तुतिरखिलजगन्मङ्गलप्रसङ्गस्य ।
अज्ञेनापि मयाऽस्य क्रियते सुहृदां प्रमोदाय ॥ ६ ॥
एतस्य भगवद्भक्तिरसामृतपयोनिधेः ।
चत्वारः खलु वक्ष्यन्ते भागाः पूर्वादयः क्रमात् ॥ ७ ॥
तत्र पूर्वे विभागेऽस्मिन् भक्तिभेदनिरूपके ।
अनुक्रमेण वक्तव्यं लहरीणां चतुष्टयम् ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

आद्या सामान्यभक्त्याढ्या द्वितीया साधनाङ्किता ।
भावाश्रिता तृतीया च तुर्य्या प्रेमनिरूपिका ॥ ९ ॥
तत्रादौ सुष्ठु वैशिष्ट्यमस्याः कथयितुं स्फुटम् ।
लक्षणं क्रियते भक्तेरुत्तमायाः सतां मतम् ॥ १० ॥
अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्म्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥ ११ ॥
सालोक्येत्यादिपद्यस्थभक्तोत्कर्षनिरूपणम् ।
भक्तेर्विशुद्धताव्यक्त्या लक्षणे पर्य्यवस्यति ॥ १२ ॥
क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा ।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षणी च सा ॥ १३ ॥
क्लेशास्तु पापं तद्बीजमविद्या चेति ते त्रिधा ।
अप्रारब्धं भवेत् पापं प्रारब्धं चेति तद् द्विधा ॥ १४ ॥
दुर्जातिरेव सवनायोग्यत्वे कारणं मतम् ।
दुर्जात्यारम्भकं पापं यत्स्यात्प्रारब्धमेव तत् ॥ १५ ॥
शुभानि प्रीणनं सर्वजगतामनुरक्तता ॥
सद्गुणाः सुखमित्यादीन्याख्यातानि मनीषिभिः ॥ १६ ॥
सुखं वैषयिकं ब्राह्ममैश्वरं चेति तत्त्रिधा ।
मनागेव प्ररूढायां हृदये भगवद्रतौ ॥ १७ ॥
पुरुषार्थास्तु चत्वारस्तृणायन्ते समन्ततः ।
साधनौघैरनासङ्गैरलभ्या सुचिरादपि ॥ १८ ॥
हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्यात्सुदुर्लभा ।
ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणीकृतः ॥ १९ ॥
नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परामाणुतुलामपि ।
कृत्वा हरिं प्रेमभाजं प्रियवर्गसमन्वितम् ॥ २० ॥
भक्तिर्वशीकरोतीति श्रीकृष्णाकर्षिणी मता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अग्रतो वक्ष्यमाणायास्त्रिधा भक्तेरनुक्रमात् ॥ २१ ॥
द्विशः षड्भिः पदैरेतन्माहात्म्यं परिकीर्तितम् ।
स्वल्पाऽपि रुचिरेव स्याद्भक्तितत्त्वावबोधिका ॥ २२ ॥
युक्तिस्तु केवला नैव यदस्या अप्रतिष्ठता ।

इति श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ पूर्वविभागे भक्तिसामान्यलहरी प्रथमा ।

द्वितीयलहरी—
साधनभक्ति

सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता ।
कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा ॥ १ ॥
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता ।
सा भक्तिः सप्तमस्कन्धे भङ्ग्या देवर्षिणोदिता ॥ २ ॥
वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा ।
यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते ॥ ३ ॥
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते ।
इत्यसौ स्याद्विधिर्नित्यः सर्ववर्णाश्रमादिषु ॥ ४ ॥
नित्यत्वेऽप्यस्य निर्णीतमेकादश्यादिवत्फलम् ।
यः केनाप्यतिभाग्येन जातश्रद्धोऽस्य सेवने ॥ ५ ॥
नातिसक्तो न वैराग्यभागस्यामधिकार्य्यसौ ।
उत्तमो मध्यमश्च स्यात्कनिष्ठश्चेति स त्रिधा ॥ ६ ॥
शास्त्रे युक्तौ च निपुणः सर्वथा दृढनिश्चयः ।
प्रौढश्रद्धोऽधिकारी यः स भक्तावुत्तमो मतः ॥ ७ ॥
य शास्त्रादिष्वनिपुणः श्रद्धावान्स तु मध्यमः ।
यो भवेत्कोमलश्रद्धः स कनिष्ठो निगद्यते ॥ ८ ॥
तत्र गीतादिषूक्तानां चतुर्णामधिकारिणाम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मध्ये यस्मिन् भगवतः कृपा स्यात्तत्प्रियस्य वा ॥ ९ ॥
स क्षीणतत्तद्भावः स्याच्छुद्धभक्त्यधिकारवान् ।
यथेभः शौनकादिश्च ध्रुवः स च चतुःसनः ॥ १० ॥
भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते ।
तावद्भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥ ११ ॥
तत्रापि च विशेषेण गतिमण्वीमनिच्छतः ।
भक्तिर्हृतमनःप्राणान् प्रेम्णा तान् कुरुते जनान् ॥ १२ ॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोजसेवानिर्वृतचेतसाम् ।
एषां मोक्षाय भक्तानां न कदाऽपि स्पृहा भवेत् ॥ १३ ॥
अत्र त्याज्यतयैवोक्ता मुक्तिः सर्वविधाऽपि चेत् ।
सालोक्यादिस्तथाऽप्यत्र भक्त्या नातिविरुध्यते ॥ १४ ॥
सुखैश्वर्योत्तरा सेयं प्रेमसेवोत्तरेत्यपि ।
सालोक्यादिर्द्विधा तत्र नाद्या सेवाजुषां मता ॥ १५ ॥
किन्तु प्रेमैकमाधुर्यभुज एकान्तिनो हरौ ।
नैवाङ्गीकुर्वते जातु मुक्तिं पञ्चविधामपि ॥ १६ ॥
तत्राप्येकान्तिनां श्रेष्ठा गोविन्दहृतमानसाः ।
येषां श्रीशप्रसादोऽपि मनो हर्तुं न शक्नुयात् ॥ १७ ॥
सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि कृष्णश्रीशस्वरूपयोः ।
रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः ॥ १८ ॥
शास्त्रतः श्रूयते भक्तौ नृमात्रस्याधिकारिता ।
सर्वाधिकारितां माघस्नानस्य ब्रुवता यतः ॥ १९ ॥
दृष्टान्तिता वशिष्ठेन हरिभक्तिर्नृपं प्रति ।
अननुष्ठानतो दोषो भक्त्यङ्गानां प्रजायते ॥ २० ॥
न कर्म्मणामकरणादेष भक्त्याधिकारिणाम् ।
निषिद्धाचारतो दैवात् प्रायश्चित्तं च नोचितम् ॥ २१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति वैष्णवशास्त्राणां रहस्यं तद्विदां मतम् ।
हरिभक्तिविलासेऽस्या भक्तेरङ्गानि लक्षशः ॥ २२ ॥
किं तु तानि प्रसिद्धानि निर्देश्यन्ते यथामति ।
आश्रितावान्तरानेकभेदं केवलमेव वा ॥ २३ ॥
एकं कर्मात्र विद्वद्भिरेकं भक्त्यङ्गमुच्यते ।
गुरुपादाश्रयस्तस्मात् कृष्णदीक्षाऽऽदिशिक्षणम् ॥ २४ ॥
विस्रम्भेण गुरोः सेवा साधुवर्त्मानुवर्त्तनम् ।
सद्धर्मपृच्छा भोगादित्यागः कृष्णस्य हेतवे ॥ २५ ॥
निवासो द्वारकाऽऽदौ च गङ्गाऽऽदेरपि संनिधौ ।
व्यवहारेषु सर्वेषु यावदर्थानुवर्त्तिता ॥ २६ ॥
हरिवासरसम्मानो धात्र्यश्वत्थादिगौरवम् ।
एषामत्र दशाङ्गानां भवेत् प्रारम्भरूपता ॥ २७ ॥
सङ्गत्यागो विदूरेण भगवद्विमुखैर्जनैः ।
शिष्याद्यननुबन्धित्वं महारम्भाद्यनुद्यमः ॥ २८ ॥
बहुग्रन्थकलाऽभ्यासव्याख्यावादविवर्जनम् ।
व्यवहारेऽप्यकार्पण्यं शोकाद्यवशवर्त्तिता ॥ २९ ॥
अन्यदेवानवज्ञा च भूतानुद्वेगदायिता ।
सेवानामापराधानामुद्धवाभावकारिता ॥ ३० ॥
कृष्णतद्भक्तविद्वेषिविनिन्दाऽऽद्यसहिष्णुता ।
व्यतिरेकतयाऽमीषां दशानां स्यादनुष्ठितिः ॥ ३१ ॥
अस्यास्तत्र प्रवेशाय द्वारत्वेऽप्यङ्गविंशतेः ।
त्रयं प्रधानमेवोक्तं गुरुपादाश्रयादिकम् ॥ ३२ ॥
धृतिवैष्णवचिह्नानां हरेर्नामाक्षरस्य च ।
निर्माल्यादेश्च तस्याग्रे ताण्डवं दण्डवन्नतिः ॥ ३३ ॥
अभ्युत्थानमनुव्रज्या गतिः स्थाने परिक्रमा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

अर्चनं परिचर्या च गतिः सङ्कीर्तनं जपः ॥ ३४ ॥
विज्ञप्तिः स्तवपाठश्च स्वादो नैवेद्यपाद्ययोः ।
धूपमाल्यादिसौरभ्यं श्रीमूर्त्तेः स्पृष्टिरीक्षणम् ॥ ३५ ॥
आरात्रिकोत्सवादेश्च श्रवणं तत्कृपेक्षणम् ।
स्मृतिर्ध्यानं तथा दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ ३६ ॥
निजप्रियोपहरणं तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ।
सर्वथा शरणापत्तिस्तदीयानां च सेवनम् ॥ ३७ ॥
तदीयास्तुलसीशास्त्रमथुरावैष्णवादयः ।
यथावैभवसामग्री सद्गोष्ठीभिर्महोत्सवः ॥ ३८ ॥
ऊर्जादरो विशेषेण यात्रा जन्मदिनादिषु ।
श्रद्धाविशेषतः प्रीतेः श्रीमूर्त्तेरङ्घ्रिसेवनम् ॥ ३९ ॥
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह ।
सजातीयाशये स्निग्धे साधौ सङ्गः स्वतो वरे ॥ ४० ॥
नामसङ्कीर्त्तनं श्रीमन्मथुरामण्डले स्थितिः ।
अङ्गानां पञ्चकस्यास्य पूर्वं विलिखितस्य च ॥ ४१ ॥
निखिलश्रैष्ठ्यबोधाय पुनरप्यत्र शंसनम् ।
इति कायहृषीकान्तःकरणानामुपासनाः ॥ ४२ ॥
चतुःषष्टिः पृथक् सांघातिकभेदात् क्रमादिमाः ।
अथार्षानुमतेनैषामुदाहरणमीर्य्यते ॥ ४३ ॥
भक्तिरैकान्तिकीवेयमविचारात्प्रतीयते ।
वस्तुतस्तु तथा नैव यदशास्त्रीयतेक्ष्यते ॥ ४४ ॥
स्थानं तीर्थं गृहं चास्य तत्र तीर्थे गतिर्यथा ।
शुद्धिन्यासादिपूर्वाङ्गकर्मनिर्वाहपूर्वकम् ॥ ४५ ॥
अर्चनं तूपचाराणां स्यान्मन्त्रेणोपपादनम् ।
परिचर्य्या तु सेवोपकरणादिपरिष्क्रिया ॥ ४६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा प्रकीर्णकच्छत्रवादित्राद्यैरुपासना ।
अङ्गानि विविधान्येव स्युः पूजापरिचर्य्ययोः ॥ ४७ ॥
न तानि लिखितान्यत्र ग्रन्थबाहुल्यभीतितः ।
नामलीलागुणादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्त्तनम् ॥ ४८ ॥
मन्त्रस्य सुलघूच्चारो जप इत्यभिधीयते ।
सम्प्रार्थनाऽऽत्मिका दैन्यबोधिका लालसामयी ॥ ४९ ॥
इत्यादिर्विविधा धीरैः कृष्णे विज्ञप्तिरीरिता ।
प्रोक्ता मनीषिभिर्गीतास्तवराजादयः स्तवाः ॥ ५० ॥
श्रवणं नामचरितगुणादीनां श्रुतिर्भवेत् ।
यथा कथञ्चिन्मनसा सम्बन्धः स्मृतिरुच्यते ॥ ५१ ॥
ध्यानं रूपगुणक्रीडासेवाऽऽदेः सुष्ठु चिन्तनम् ।
दास्यं कर्मार्पणं तस्य कैङ्कर्य्यमपि सर्वथा ॥ ५२ ॥
कर्म स्वाभाविकं भद्रं जपध्यानार्चनादि च ।
इतीदं द्विविधं कृष्णे वैष्णवैर्दास्यमर्पितम् ॥ ५३ ॥
मृदुश्रद्धस्य कथिता स्वल्पा कर्माधिकारिता ।
तदर्पितं हरौ दास्यमिति कैश्चिदुदीर्यते ॥ ५४ ॥
विश्वासो मित्रवृत्तिश्च सख्यं द्विविधमीरितम् ।
श्रद्धामात्रस्य तद्भक्तावधिकारित्वहेतुता ॥ ५५ ॥
अङ्गत्वमस्य विश्वासविशेषस्य तु केशवे ।
रागानुगाऽङ्गताऽस्य स्याद्विधिमार्गानपेक्षणात् ॥ ५६ ॥
मार्गद्वयेन चैतेन साध्या सख्यरतिर्मता ।
अर्थो द्विधाऽऽत्मशब्दस्य पण्डितैरुपपाद्यते ॥ ५७ ॥
देह्यहंताऽऽस्पदं कैश्चिद्देहः कैश्चिन्ममत्वभाक् ।
दुष्करत्वेन बिरले द्वे सख्यात्मनिवेदने ॥ ५८ ॥
केषां चिदेव धीराणां लभेते साधनार्हताम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

शास्त्रमत्र समाख्यातं यद्भक्तिप्रतिपादकम् ॥ ५९ ॥
श्रुता स्मृता कीर्त्तिता च वाञ्छिता प्रेक्षिता गता ।
स्पृष्टा श्रिता सेविता च मथुराऽभीष्टदा नृणाम् ॥ ६० ॥
इति ख्यातं पुराणेषु न विस्तरभियोच्यते ।
यावन्ति भगवद्भक्तेरङ्गानि कथितानि ह ॥ ६१ ॥
प्रायस्तावन्ति तद्भक्तभक्तेरपि बुधा विदुः ।
अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः ॥ ६२ ॥
सेवोन्मुखे हि जिह्वाऽऽदौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ।
दुरूहाद्भुतवीर्य्येऽस्मिन् श्रद्धा दूरेऽस्तु पञ्चके ॥ ६३ ॥
यत्र स्वरूपोऽपि सम्बन्धः सद्धियां भावजन्मने ।
अलौकिकपदार्थानामचिन्त्या शक्तिरीदृशी ॥ ६४ ॥
भावं तद्विषयं चापि या सहैव प्रकाशयेत् ।
केषां चित् क्व चिदङ्गानां यत्क्षुद्रं श्रूयते फलम् ॥ ६५ ॥
बहिर्मुखप्रवृत्त्यैतत्किं तु मुख्यं फलं रतिः ।
सम्मतं भक्तिविज्ञानां भक्त्यङ्गत्वं तु कर्मणाम् ॥ ६६ ॥
ज्ञानवैराग्ययोर्भक्तिप्रवेशायोपयोगिता ।
ईदृषत्प्रथममेवेति नाङ्गत्वमुचितं तयोः ॥ ६७ ॥
यदुभे चित्तकाठिन्यहेतू प्रायः सतां मते ।
सुकुमारस्वभावेयं भक्तिस्तद्धेतुरीरिता ॥ ६८ ॥
किं तु ज्ञानविरक्त्यादिसाध्यं भक्त्यैव सिध्यति ।
रुचिमुद्वहतस्तत्र जनस्य भजने हरेः ॥ ६९ ॥
विषयेषु गरिष्ठोऽपि रागः प्रायो विलीयते ।
अनासक्तस्य विषयान् यथाऽर्हमुपयुञ्जतः ॥ ७० ॥
निर्बन्धः कृष्णसंबन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते ।
प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः ॥ ७१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते ।
प्रोक्तेन लक्षणेनैव भक्तेरधिकृतस्य च ॥ ७२ ॥
अङ्गत्वे सुनिरस्तेऽपि नित्याद्यखिलकर्म्मणाम् ।
ज्ञानस्याध्यात्मिकस्यापि वैराग्यस्य च फल्गुनः ॥ ७३ ॥
स्पष्टताऽर्थं पुनरपि तदेवेदं निराकृतम् ।
धनशिष्यादिभिर्द्वारैर्या भक्तिरुपपाद्यते ॥ ७४ ॥
विदूरत्वादुत्तमताहान्या तस्याश्च नाङ्गता ।
विशेषणत्वमेवैषां संश्रयन्त्यधिकारिणाम् ॥ ७५ ॥
विवेकादीन्यतोऽमीषामपि नाङ्गत्वमुच्यते ।
कृष्णोन्मुखं स्वयं यान्ति यमाः शौचादयस्तथा ॥ ७६ ॥
इत्येषां च न युक्ता स्याद्भक्त्यङ्गान्तरपातिता ।
सा भक्तिरेकमुख्याङ्गा श्रितानैकाङ्गिकाऽथ वा ॥ ७७ ॥
स्ववासनाऽनुसारेण निष्ठातः सिद्धिकृद्भवेत् ।
शास्त्रोक्तया प्रबलया तत्तन्मर्य्यादयाऽन्विता ॥ ७८ ॥
वैधी भक्तिरियं कैश्चिन्मर्यादामार्ग उच्यते ।
विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु ॥ ७९ ॥
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते ।
रागानुगाविवेकार्थमादौ रागात्मिकोच्यते ॥ ८० ॥
इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत् ।
तन्मयी या भवेद्भक्तिः साऽत्र रागात्मिकोदिता ॥ ८१ ॥
सा कामरूपा सम्बन्धरूपा चेति भवेद् द्विधा ।
आनुकूल्यविपर्यासाद् भीतिद्वेषौ पराहतौ ॥ ८२ ॥
स्नेहस्य सख्यवात्सल्यद्वैधभक्त्यनुवर्त्तिता ।
किं वा प्रेमाभिधायित्वान्नोपयोगोऽत्र साधने ॥ ८३ ॥
"भक्त्या वयमि"ति व्यक्तं वैधी भक्तिरुदीरिता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

यदरीणां प्रियाणां च प्राप्यमेकमिवोदितम् ॥ ८४ ॥
तद्ब्रह्मकृष्णयोरैक्त्यात्किरणार्कोपमाजुषोः ।
ब्रह्मण्येव लयं यान्ति प्रायेण रिपवो हरेः ॥ ८५ ॥
केचित्प्राप्यापि सारूप्याभासं मज्जन्ति तत्सुखे ।
रागबन्धेन केनापि तं भजन्तो व्रजन्त्यमी ॥ ८६ ॥
अङ्घ्रिपद्मसुधाः प्रेमरूपास्तस्य प्रियाजनाः ।
सा कामरूपा सम्भोगतृष्णां या नयति स्वताम् ॥ ८७ ॥
यदस्यां कृष्णसौख्यार्थमेव केवलमुद्यमः ।
इयं तु व्रजदेवीषु सुप्रसिद्धा विराजते ॥ ८८ ॥
आसां प्रेमविशेषोऽयं प्राप्तः कामपि माधुरीम् ।
तत्तत्क्रीडानिदानत्वात्काम इत्युच्यते बुधैः ॥ ८९ ॥
इत्युद्धवादयोऽप्येतं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः ।
कामप्राया रतिः किन्तु कुब्जायामेव सम्मता ॥ ९० ॥
सम्बन्धरूपा गोविन्दे पितृत्वाद्यभिमानिता ।
अत्रोपलक्षणतया वृष्णीनां बल्लवा मताः ॥ ९१ ॥
यदैश्यज्ञानशून्यत्वादेषां रागे प्रधानता ।
कामसम्बन्धरूपे ते प्रेममात्रस्वरूपके ॥ ९२ ॥
नित्यसिद्धाश्रयतया नात्र सम्यग्विचारिते ।
रागात्मिकाया द्वैविध्याद् द्विधा रागानुगा च सा ॥ ९३ ॥
कामानुगा च सम्बन्धानुगा चेति निगद्यते ।
रागात्मिकैकनिष्ठा ये व्रजवासिजनादयः ॥ ९४ ॥
तेषां भावाप्तये लुब्धो भवेदत्राधिकारवान् ।
तत्तद्भावादिमाधुर्य्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते ॥ ९५ ॥
नात्र शास्त्रं न युक्तिं च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम् ।
वैधभक्त्यधिकारी तु भावाविर्भावनावधिः ॥ ९६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र शास्त्रं तथा तर्कमनुकूलमपेक्षते ।
कृष्णं स्मरन् जनं चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम् ॥ ९७ ॥
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्य्याद्वासं व्रजे सदा ।
सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि ॥ ९८ ॥
तद्भावलिप्सुना कार्य्या व्रजलोकानुसारतः ।
श्रवणोत्कीर्त्तनादीनि वैधभक्त्युदितानि तु ॥ ९९ ॥
यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः ।
कामानुगा भवेत्तृष्णा कामरूपानुगामिनी ॥ १०० ॥
सम्भोगेच्छामयी तत्तद्भावेच्छाऽऽत्मेति सा द्विधा ।
केलितात्पर्यवत्येव सम्भोगेच्छामयी भवेत् ॥ १०१ ॥
तद्भावेच्छाऽऽत्मिका तासां भावमाधुर्य्यकामिता ।
श्रीमूर्त्तेर्माधुरीं प्रेक्ष्य तत्तल्लीलां निशम्य वा ॥ १०२ ॥
तद्भावाकाङ्क्षिणो ये स्युस्तेषु साधनताऽनयोः ।
पुराणे श्रूयते पाद्मे पुंसामपि भवेदियम् ॥ १०३ ॥
रिरंसां सुष्ठु कुर्वन् यो विधिमार्गेण सेवते ।
केवलेनैव स तदा महिषीत्वमियात्पुरे ॥ १०४ ॥
सा सम्बन्धानुगा भक्तिः प्रोच्यते सद्भिरात्मनि ।
या पितृत्वादिसम्बन्धमननारोपणात्मिका ॥ १०५ ॥
लुब्धैर्वात्सल्यसख्यादौ भक्तिः कार्य्याऽत्र साधकैः ।
व्रजेन्द्रसुबलादीनां भावचेष्टितमुद्रया ॥ १०६ ॥
तथा हि श्रूयते शास्त्रे कश्चित्कुरुपुरीस्थितः ।
नन्दसूनोरधिष्ठानं तत्र पुत्रतया भजन् ॥ १०७ ॥
नारदस्योपदेशेन सिद्धोऽभूद् वृद्धवार्द्धकिः ।
कृष्णतद्भक्तकारुण्यमात्रलाभैकहेतुका ॥ १०८ ॥
पुष्टिमार्गतया कैश्चिदियं रागानुगोच्यते ।
इति भक्तिरसामृतसिन्धौ पूर्वविभागे साधनभक्तिलहरी ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

भावभक्ति

तृतीयलहरी—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक् ।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते ॥ १ ॥
आविर्भूय मनोवृत्तौ व्रजन्ती तत्स्वरूपताम् ।
स्वयंप्रकाशरूपाऽपि भासमाना प्रकाश्यवत् ॥ २ ॥
वस्तुतः स्वयमास्वादस्वरूपैव रतिस्त्वसौ ।
कृष्णादिकर्म्मकास्वादहेतुत्वं प्रतिपद्यते ॥ ३ ॥
साधनाभिनिवेशेन कृष्णतद्भक्तयोस्तथा ।
प्रसादेनातिधन्यानां भावो द्वेधाऽभिजायते ॥ ४ ॥
आद्यस्तु प्रायिकस्तत्र द्वितीयो विरलोदयः ।
वैधीरागानुगामार्गभेदेन परिकीर्त्तितः ॥ ५ ॥
द्विविधः खलु भात्यत्र साधनाभिनिवेशजः ।
साधनाभिनिवेशस्तु तत्र निष्पादयन् रुचिम् ॥ ६ ॥
हरावासक्तिमुत्पाद्य रतिं संजनयत्यसौ ।
रत्या तु भाव एवात्र न तु प्रेमाऽभिधीयते ॥ ७ ॥
मम भक्तिः प्रवृत्तेति वक्ष्यते स यदग्रतः ।
पुराणे नाट्यशास्त्रे च द्वयोस्तु रतिभावयोः ॥ ८ ॥
समानार्थतया ह्यत्र द्वयमैक्येन लक्षितम् ।
साधनेन विना यस्तु सहसैवाभिजायते ॥ ९ ॥
स भावः कृष्णतद्भक्तप्रसादज इतीर्यते ।
प्रसादा वाचिकालोकदानहार्द्दादयो हरेः ॥ १० ॥
प्रसाद आन्तरो यः स्यात् स हार्द इति कथ्यते ।
भक्तानां भेदतः सेयं रतिः पञ्चविधा मता ॥ ११ ॥
अग्रे विविच्य वक्तव्या तेन नात्र प्रपञ्च्यते ।
क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः ।
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले ॥ १३ ॥
इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने ।
क्षोभहेतावपि प्राप्ते क्षान्तिरक्षुभितात्मता ॥ १४ ॥
विरक्तिरिन्द्रियार्थानां स्यादरोचकता स्वयम् ।
उत्कृष्टत्वेऽप्यमानित्वं कथिता मानशून्यता ॥ १५ ॥
आशाबन्धो भगवतः प्राप्तिसम्भावना दृढा ।
समुत्कण्ठा निजाभीष्टलाभाय गुरुलुब्धता ॥ १६ ॥
व्यक्तं मसृणतेवान्तर्लक्ष्यते रतिलक्षणम् ।
मुमुक्षुप्रभृतीनां चेद्भवेदेषा रतिर्न हि ॥ १७ ॥
विमुक्ताखिलतर्धैर्या मुक्तैरपि विमृग्यते ।
या कृष्णेनातिगोप्याऽऽशु भजद्भ्योऽपि न दीयते ॥ १८ ॥
सा मुक्तिमुक्तिकामत्वाच्छुद्धां भक्तिमकुर्वताम् ।
हृदये सम्भवत्येषां कथं भागवती रतिः ॥ १९ ॥
किन्तु बालचमत्कारकारी तच्चिन्हवीक्षया ।
अभिज्ञेन सुबोधोऽयं रत्याभासः प्रकीर्त्तितः ॥ २० ॥
प्रतिबिम्बस्तथा छाया रत्याभासो द्विधा मतः ।
आश्रमाभीष्टनिर्वाही रतिलक्षणलक्षितः ॥ २१ ॥
भोगापवर्गसौख्यांशव्यञ्जकः प्रतिबिम्बकः ।
दैवात्सद्भक्तसङ्गेन कीर्त्तनाद्यनुसारिणाम् ॥ २२ ॥
प्रायः प्रसन्नमनसां भोगमोक्षादिरागिणाम् ।
केषां चिद् धृदि भावेन्दोः प्रतिबिम्ब उदञ्चति ॥ २३ ॥
तद्भक्तहृन्नभःस्थस्य तत्संसर्गप्रभावतः ।
क्षुद्रकौतुहलमयी चञ्चला दुःखहारिणी ॥ २४ ॥
रतेश्छाया भवेत् किञ्चित्तत्सादृश्यावलम्बिनी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

हरिप्रियाक्रियाकालदेशपात्रादिसङ्गमात् ॥ २५ ॥
अप्यानुषङ्गिकादेषा क्व चिदज्ञेष्वपीक्ष्यते ।
किं तु भाग्यं विना नासौ भावच्छायाऽप्युदञ्चति ॥ २६ ॥
यदभ्युदयतः क्षेमं तत्र स्यादुत्तरोत्तरम् ।
हरिप्रियजनस्यैव प्रसादभरलाभतः ॥ २७ ॥
भावाभासोऽपि सहसा भावतामुपगच्छति ।
तस्मिन्नेवापराधेन भावाभासोऽप्यनुत्तमः ॥ ३८ ॥
क्रमेण क्षयमायाति खस्थः पूर्णशशी यथा ।
भावोऽप्यभावमायाति कृष्णप्रेष्ठापराधतः ॥ २९ ॥
आभासतां च शनकैर्न्यूनजातीयतामपि ।
गाढासङ्गात्सदा याति मुमुक्षौ सुप्रतिष्ठिते ॥ ३० ॥
आभासतामसौ किं वा भजनीयेशभावताम् ।
अत एव क्व चित्तेषु नव्यभक्तेषु दृश्यते ॥ ३१ ॥
क्षणभीश्वरभावोऽयं नृत्यादौ मुक्तिपक्षगः ।
साधनेक्षां विना यस्मिन्नकस्माद्भाव ईक्ष्यते ॥ ३२ ॥
विघ्नस्थगितमत्रोह्यं प्राग्भवीयं सुसाधनम् ।
लोकोत्तरचमत्कारकारकः सर्वशक्तिदः ॥ ३३ ॥
यः प्रथीयान् भवेद्भावः स तु कृष्णप्रसादजः ।
जने चेज्जातभावेऽपि वैगुण्यमिव दृश्यते ॥ ३४ ॥
कार्य्या तथाऽपि नासूया कृतार्थः सर्वथैव सः ॥
रतिरनिशनिसर्गोष्णप्रबलतरानन्दपूररूपैव ।
ऊष्माणमपि वमन्ती शुचांशुकोटेरपि स्वाद्वी ॥ ३५ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ पूर्वविभागे भावभक्तिलहरी ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसोपयोगि स्थायिभावोपपादन

चतुर्थलहरी—

सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः ।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ॥ १ ॥
भक्तिः प्रेमोच्यते भीष्ममुखैर्यत्र तु संगता ।
ममताऽन्यममत्वेन वर्जितेत्यत्र योजना ॥ २ ॥
भावोत्थोऽतिप्रसादोत्थः श्रीहरेरिति स द्विधा ।
भाव एवान्तरङ्गाणामङ्गानामनुसेवया ॥ ३ ॥
आरूढः परमोत्कर्षं भावोत्थः परिकीर्त्तितः ।
हरेरतिप्रसादोऽयं सङ्गदानादिरात्मनः ।
माहात्म्यज्ञानयुक्तश्च केवलश्चेति स द्विधा ॥ ४ ॥
महिमज्ञानयुक्तः स्याद्विधिमार्गानुसारिणाम् ।
रागानुगाश्रितानां तु प्रायशः केवलो भवेत् ॥ ५ ॥
आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया ।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥ ६ ॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाऽभ्युदञ्चति ॥
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः ॥ ७ ॥
धन्यस्यायं नवः प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि ।
अन्तर्वाणिभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सुदुर्गमा ॥ ८ ॥
प्रेम्ण एव विलासत्वाद्वैरस्यात्साधकेष्वपि ।
अत्र स्नेहादयो भेदा विचिन्त्य न हि शंसिताः ॥ ९ ॥
श्रीमत्प्रभुपदाम्भोजैः सर्वा भागवतामृते ।
व्यक्तीकृताऽस्ति गूढाऽपि भक्तिसिद्धान्तमाधुरी ॥ १० ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ पूर्वविभागे प्रेमभक्तिलहरी ॥ ४ ॥

गोपालरूपशोभां दधदपि रघुनाथभावविस्तारी ।
तुष्यतु सनातनात्मा प्रथमविभागे रसाम्बुनिधेः ॥ १ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ रसोपयोगिस्थायिभावोपपादननामा पूर्वो विभागः ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

सामान्यभक्तिरसनिरूपके दक्षिणविभागे

प्रथमलहरी—

प्रबलमनन्याश्रयिणा निषेवितः सहजरूपेण ।
अघमथनो मथुरायां सदा सनातनतनुर्जयति ॥ १ ॥
रसामृताब्धेर्भागेऽस्मिन् द्वितीये दक्षिणाभिधे ।
सामान्यभगद्भक्तिरसस्तावदुदीर्य्यते ॥ २ ॥
अस्य पञ्च लहर्य्यः स्युर्विभावाख्याऽग्रिमा मता ॥
द्वितीया त्वनुभावाख्या तृतीया सात्त्विकाभिधा ॥ ३ ॥
व्यभिचार्य्यभिधा तुर्य्या स्थायिसंज्ञा तु पञ्चमी ।
अथास्याः केशवरतेर्लक्षिताया निगद्यते ॥ ४ ॥
सामग्रीपरिपोषेण परमा रसरूपता ।
विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ॥ ५ ॥
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः ।
एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत् ॥ ६ ॥
प्राक्तन्याधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्तिवासना ।
एष भक्तिरसास्वादस्तस्यैव हृदि जायते ॥ ७ ॥
भक्तिनिर्धूतदोषाणां प्रसन्नोज्ज्वलचेतसाम् ।
श्रीभागवतरक्तानां रसिकासङ्गरङ्गिणाम् ॥ ८ ॥
जीवनीभूतगोविन्दपादभक्तिसुखाश्रियाम् ।
प्रेमाम्तरङ्गभूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम् ॥ ९ ॥
भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कारयुगलोज्ज्वला ।
रतिरानन्दरूपैव नीयमाना तु रस्यताम् ॥ १० ॥
कृष्णादिभिर्विभावाद्यैर्गतैरनुभवाध्वनि ।
प्रौढानन्दचमत्कारकाष्ठामापद्यते पराम् ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किं तु प्रेमा विभावाद्यैः स्वरूपैर्नीतोऽप्यणीयसीम् ।
विभावनाद्यवस्थां तु सद्य आस्वाद्यतां व्रजेत् ॥ १२ ॥
ये कृष्णभक्तमुरलीनादाद्या हेतवो रतेः ।
कार्य्यभूताः स्मिताद्याश्च तथाऽष्टौ स्तब्धताऽऽदयः ॥ १३ ॥
निर्वेदाद्याः सहायाश्च ते ज्ञेया रसभावने ॥
विभावा अनुभावाश्च सात्त्विका व्यभिचारिणः ॥ १४ ॥
तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादनहेतवः ।
ते द्विधाऽऽलम्बना एके तथैवोद्दीपनाः परे ॥ १५ ॥
कृष्णश्च कृष्णभक्ताश्च बुधैरालम्बना मताः ।
रत्यादेर्विषयत्वेन तथाऽऽधारतयाऽपि च ॥ १६ ॥
नायकानां शिरोरत्नं कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
यत्र नित्यतया सर्वे विराजन्ते महागुणाः ॥ १७ ॥
सोऽन्यरूपस्वरूपाभ्यामस्मिन्नालम्बनो मतः ।
आवृतं प्रकटं चेति स्वरूपं कथितं द्विधा ॥ १८ ॥
अन्यवेषादिनाऽऽच्छन्नं स्वरूपं प्रोक्तमावृतम् ।
अयं नेता सुरम्याङ्गः सर्वसल्लक्षणान्वितः ॥ १९ ॥
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलीयान् वयसाऽन्वितः ।
विविधाद्भुतभाषावित् सत्यवाक्यः प्रियंवदः ॥ २० ॥
वावदूकः सुपाण्डित्यो बुद्धिमान् प्रतिभाऽन्वितः ।
विदग्धश्चतुरो दक्षः कृतज्ञः सुदृढव्रतः ॥ २१ ॥
देशकालसुपात्रज्ञः शास्त्रचक्षुः शुचिर्वशी ।
स्थिरो दान्तः क्षमाशीलो गभीरो धृतिमान् समः ॥ २२ ॥
वदान्यो धार्म्मिकः शूरः करुणो मान्यमानकृत् ।
दक्षिणो विनयी ह्रीमान् शरणागतपालकः ॥ २३ ॥
सुखी भक्तसुहृत् प्रेमवश्यः सर्वशुभङ्करः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

प्रतापी कीर्तिमान् रक्तलोकः साधुसमाश्रयः ॥ २४ ॥
नारीगणमनोहारी सर्वाराध्यः समृद्धिमान् ।
वरीयानीश्वरश्चेति गुणास्तस्यानुकीर्त्तिताः ॥ २५ ॥
समुद्रा इव पञ्चाशद् दुर्विगाहा हरेरमी ।
जीवेष्वेते वसन्तोऽपि बिन्दुबिन्दुतया क्व चित् ॥ २६ ॥
परिपूर्णतया भान्ति तत्रैव पुरुषोत्तमे ।
तथा हि पाद्मे पार्वत्यै शितिकण्ठेन तद्गुणाः ॥ २७ ॥
कन्दर्पकोटिलावण्या इत्याद्याः परिकीर्त्तिताः ।
एत एव गुणाः प्रायो धर्म्माय वनमालिनः ॥ २८ ॥
पृथिव्या प्रथमस्कन्धे प्रथयाञ्चक्रिरे स्फुटम् ।
अथ पञ्च गुणा ये स्फुरंशेन गिरिशादिषु ॥ २९ ॥
सदास्वरूपसम्प्राप्तः सर्वज्ञो नित्यनूतनः ।
सच्चिदानन्दसान्द्राङ्गः सर्वसिद्धिनिषेवितः ॥ ३० ॥
अथोच्यन्ते गुणाः पञ्च ये लक्ष्मीशादिवर्त्तिनः ।
अविचिन्त्यमहाशक्तिः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः ॥ ३१ ॥
अवतारावलीबीजं हतारिगतिदायकः ।
आत्मारामगणाकर्षीत्यमी कृष्णे किलाद्भुताः ॥ ३२ ॥
सर्व्वाद्भुतचमत्कारलीलाकल्लोलवारिधिः ।
अतुल्यमधुरप्रेममण्डितप्रियमण्डलः ॥ ३३ ॥
त्रिजगन्मानसाकर्षी मुरलीकलकूजितैः ।
असमानोर्ध्वरूपश्रीर्विस्मापितचराचरः ॥ ३४ ॥
लीलाप्रेम्णा प्रियाधिक्यं माधुर्य्यं वेणुरूपयोः ।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम् ॥ ३५ ॥
एवंगुणाश्चतुर्भेदाश्चतुःषष्टिरुदाहृताः ।
सोदाहरणमेतेषां लक्षणं क्रियते क्रमात् ॥ ३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लाघ्याङ्गसंनिवेशो यः सुरम्याङ्गः स कथ्यते ।
तनौ गुणोत्थमङ्कोत्थमिति सल्लक्षणं द्विधा ॥ ३७ ॥
गुणोत्थं स्याद् गुणैर्योगो रक्ततातुङ्गताऽऽदिभिः ।
रेखामयं रथाङ्गादि स्यादङ्कोत्थं करादिषु ॥ ३८ ॥
सौन्दर्य्येण दृगानन्दकारी रुचिर उच्यते ।
तेजो धाम प्रभावश्चेत्युच्यते द्विविधं बुधैः ॥ ३९ ॥
दीप्तिराशिर्भवेद्धाम प्रभावः सर्वजित्स्थितिः ।
प्राणेन महता पूर्णो बलीयानिति कथ्यते ॥ ४० ॥
वयसो विविधत्वेऽपि सर्वभक्तिरसाश्रयः ।
धर्म्मी किशोर एवात्र नित्यनानाविलासवान् ॥ ४१ ॥
विविधाद्भुतभाषावित् स प्रोक्तो यस्तु कोविदः ।
नानादेश्यासु भाषासु संस्कृते प्राकृतेषु च ॥ ४२ ॥
स्यान्नानृतं वचो यस्य सत्यवाक्यः स भण्यते ।
जने कृतापराधेऽपि सान्त्ववादी प्रियंवदः ॥ ४३ ॥
श्रुतिप्रेष्ठोक्तिरखिलवाग्गुणान्वितवागपि ।
इति द्विधा निगदितो वावदूको मनीषिभिः ॥ ४४ ॥
विद्वान् नीतिज्ञ इत्येष सुपाण्डित्यो द्विधा मतः ।
विद्वानखिलविद्याविन्नीतिज्ञस्तु यथाऽर्हकृत् ॥ ४५ ॥
मेधावी सूक्ष्मधीश्चेति प्रोच्यते बुद्धिमान् द्विधा ।
सद्यो नवनवोल्लेखिज्ञानः स्यात्प्रतिभाऽन्वितः ॥ ४६ ॥
कलाविलासादिग्धात्मा विदग्ध इति कीर्त्यते ।
चतुरो युगपद् भूरिसमाधानकृदुच्यते ॥ ४७ ॥
दुष्करे क्षिप्रकारी यस्तं दक्षं परिचक्षते ।
कृतज्ञः स्यादभिज्ञो यः कृतसेवाऽऽदिकर्म्मणाम् ॥ ४८ ॥
प्रतिज्ञानियमौ यस्य सत्यौ स सुदृढव्रतः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

देशकालसुपात्रज्ञस्तत्तद्योग्यक्रियाकृती ॥ ४९ ॥
शास्त्रानुसारिकर्म्मा यः शास्त्रचक्षुः स कथ्यते ।
पावनश्च विशुद्धश्चेत्युच्यते द्विविधः शुचिः ॥ ५० ॥
पावनः पापनाशी स्याद्विशुद्धस्त्यक्तदूषणः ।
वशी जितेन्द्रियः प्रोक्तः आफलोदयकृत् स्थिरः ॥ ५१ ॥
स दान्तो दुःसहमपि योग्यं क्लेशं सहेत यः ।
क्षमाशीलोऽपराधानां सहनः परिकीर्त्यते ॥ ५२ ॥
दुर्विबोधाशयो यस्तु स गम्भीर इतीर्यते ।
पूर्णस्पृहश्च धृतिमान् शान्तश्च क्षोभकारणे ॥ ५३ ॥
रागद्वेषविमुक्तो यः समः स कथितो बुधैः ।
दानवीरो भवेद्यस्तु स वदान्यो निगद्यते ॥ ५४ ॥
कुर्वन् कारयते धर्म्मं यः स धार्मिक उच्यते ।
उत्साही युधि शूरोऽस्त्रप्रयोगे च विचक्षणः ॥ ५५ ॥
परदुःखासहो यस्तु करुणः स निगद्यते ।
गुरुब्राह्मणवृद्धादिपूजको मान्यमानकृत् ॥ ५६ ॥
सौशील्यसौम्यचरितो दक्षिणः कीर्त्यते बुधैः ।
औद्धत्यपरिहारी यः कथ्यते विनयीत्यसौ ॥ ५७ ॥
ज्ञातेऽस्मररहस्येऽन्यैः क्रियमाणे स्तवेऽथ वा ।
शालीनत्वेन संकोचं भजन् ह्रीमानुदीर्य्यते ॥ ५८ ॥
पालयन् शरणापन्नान् शरणागतपालकः ।
भोक्ता च दुःखगन्धैरप्यस्पृष्टश्च सुखी भवेत् ॥ ५९ ॥
सुसेव्यो दासबन्धुश्च द्विधा भक्तसुहृन्मतः ।
प्रियत्वमात्रवश्यो यः प्रेमवश्यो भवेदसौ ॥ ६० ॥
सर्वेषां हितकारी यः स स्यात्सर्वशुभङ्करः ।
प्रतापी पौरुषोद्भूतशत्रुतापिप्रसिद्धिभाक् ॥ ६१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साद्गुण्यैर्निर्मलैः ख्यातः कीर्त्तिमानिति कीर्त्यते ।
पात्रं लोकानुरागाणां रक्तलोकं विदुर्बुधाः ॥ ६२ ॥
सदेकपक्षपाती यः स स्यात्साधुसमाश्रयः ।
नारीगणमनोहारी सुन्दरीवृन्दमोहनः ॥ ६३ ॥
सर्वेषामग्रपूज्यो यः सर्वाराध्यः स उच्यते ।
महासंपत्तियुक्तो यो भवेदेष समृद्धिमान् ॥ ६४ ॥
सर्वेषामाभिमुख्ये यः स वरीयानितीर्य्यते ।
द्विधेश्वरः स्वतन्त्रश्च दुर्लङ्घ्याज्ञश्च कीर्त्यते ॥ ६५ ॥
सदास्वरूपसंप्राप्तो मायाकार्य्यावशीकृतः ।
परचित्तस्थितं देशकालाद्यन्तरितं तथा ॥ ६६ ॥
यो जानाति समस्तार्थं स सर्वज्ञो निगद्यते ।
सदाऽनुभूयमानोऽपि करोत्यननुभूतवत् ॥ ६७ ॥
विस्मयं माधुरीभिर्यः स प्रोक्तो नित्यनूतनः ।
सच्चिदानन्दसान्द्राङ्गश्चिदानन्दघनाकृतिः ॥ ६८ ॥
अतः श्रीवैष्णवैः सर्वश्रुतिस्मृतिनिदर्शनैः ।
तद् ब्रह्म श्रीभगवतो विभूतिरिति कीर्त्यते ॥ ६९ ॥
स्ववशाखिलसिद्धिः स्यात्सर्वसिद्धिनिषेवितः ।
दिव्यस्वर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मरुद्रादिमोहनम् ॥ ७० ॥
भक्तप्रारब्धविध्वंस इत्याद्याचिन्त्यशक्तिता ।
अगण्यजगदण्डाद्यः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः ॥ ७१ ॥
इति श्रीविग्रहस्यास्य विभुत्वमनुकीर्त्तितम् ।
अवतारावलीबीजमवतारी निगद्यते ॥ ७२ ॥
मुक्तिदाता हतारीणां हतारिगतिदायकः ।
आत्मारामगणाकर्षीत्येतद्व्यक्तार्थमेव हि ॥ ७३ ॥
समस्तविविधाश्चर्य्यकल्याणगुणवारिधिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

गुणानामिह कृष्णस्य दिङ्मात्रमुपदर्शितम् ॥ ७४ ॥
नित्यगुणो वनमाली यदपि शिखामणिरशेषनैतॄणाम् ।
भक्तापेक्षिकमस्य त्रिविधत्वं लिख्यते तदपि ॥ ७५ ॥
हरिः पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्ण इति त्रिधा ।
श्रेष्ठमध्यादिभिः शब्दैर्नाट्ये यः परिपठ्यते ॥ ७६ ॥
प्रकाशिताखिलगुणः स्मृतः पूर्णतमो बुधैः ।
असर्वव्यञ्जकः पूर्णतरः पूर्णोऽल्पदर्शकः ॥ ७७ ॥
कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्ताऽभूद् गोकुलान्तरे ।
पूर्णपूर्णतरता द्वारकामथुराऽऽदिषु ॥ ७८ ॥
स पुनश्चतुर्विधः स्याद् धीरोदात्तश्च धीरललितश्च ।
धीरप्रशान्तनामा तथैव धीरोद्धतः कथितः ॥ ७९ ॥
बहुविधगुणक्रियाणामास्पदभूतस्य पद्मनाभस्य ।
तत्तल्लीलाभेदाद्विरुध्यते न हि चतुर्विधता ॥ ८० ॥
गम्भीरो विनयो क्षन्ता करुणः सुदृढव्रतः ।
अकत्थनो गूढगर्वो धीरोदात्तः सुसत्त्वभृत् ॥ ८१ ॥
गम्भीरत्वादिसामान्यगुणा यदिह कीर्त्तिताः ।
तदेतेषु तदाधिक्यप्रतिपादनहेतवे ॥ ८२ ॥
इदं हि धीरोदात्तत्वं पूर्वैः प्रोक्तं रघूद्वहे ।
तत्तद्भक्तानुसारेण तथा कृष्णे विलोक्यते ॥ ८३ ॥
विदग्धो नवतारुण्यः परिहासविशारदः ।
निश्चिन्तो धीरललितः स्यात्प्रायः प्रेयसीवशः ॥ ८४ ॥
गोविन्दे प्रकटं धीरललितत्वं प्रदृश्यते ।
उदाहरन्ति नाट्यज्ञा प्रायोऽत्र मकरध्वजम् ॥ ८५ ॥
शमप्रकृतिकः क्लेशसहनश्च विवेचकः ।
विनयादिगुणोपेतो धीरशान्त उदीर्य्यते ॥ ८६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

युधिष्ठिरादिको धीरैर्धीरशान्तः प्रकीर्त्तितः।
मात्सर्य्यवानहङ्कारी मायावी रोषणश्चलः ॥ ८७ ॥
विकत्थनश्च विद्वद्भिर्धीरोद्धत उदाहृतः ।
धीरोद्धतस्तु विद्वद्भिर्भीसेनादिरुच्यते ॥ ८८ ॥
मात्सर्य्याद्याः प्रतीयन्ते दोषत्वेन यदप्यमी ।
लीलाविशेषशालित्वान्निर्दोषेऽत्र गुणाः स्मृताः ॥ ८९ ॥
मियोविरोधिनोऽप्येते के चिन्निगदिता गुणाः ।
हरौ निरङ्कुशैश्वर्यात्कोऽपि न स्यादसम्भवः ॥ ९० ॥
इत्थं सर्वावतारेभ्यस्ततोऽप्यत्रावतारिणः ।
व्रजेन्द्रनन्दने सुष्ठु माधुर्य्यभर ईरितः ॥ ९१ ॥
अथाष्टावनुकीर्त्यन्ते सद्गुणत्वेन विश्रुताः ।
मङ्गलालंक्रियारूपाः सत्त्वभेदास्तु पौरुषाः ॥ ९२ ॥
शोभा विलासो माधुर्य्यं मङ्गल्यं स्थैर्य्यतेजसी ।
ललितौदार्य्यमित्येते सत्त्वभेदास्तु पौरुषाः ॥ ९३ ॥
नीचे दयाऽधिके स्पर्द्धा शौर्य्योत्साहौ च दक्षता ।
सत्यं च व्यक्तिमायाति यत्र शोभेति तां विदुः ॥ ९४ ॥
वृषभस्येव गम्भीरा गतिर्धीरं च वीक्षणम् ।
सस्मितं च वचो यत्र स विलास इतीर्य्यते ॥ ९५ ॥
तन्माधुर्य्यं भवेद्यत्र चेष्टाऽऽदेः स्पृहणीयता ।
मङ्गल्यं जगतामेव विश्वासास्पदता मता ॥ ९६ ॥
व्यवसायादचलनं स्थैर्य्यं विघ्नाकुलादपि ।
सर्वचित्तावगाहित्वं तेजः साद्भिरुदीर्य्यते ॥ ९७ ॥
तेजो बुधैरवज्ञाऽऽदेरसहिष्णुत्वमुच्यते ।
शृङ्गारप्रचुरा चेष्टा यत्र तं ललितं विदुः ॥ ९८ ॥
आत्माद्यर्पणकारित्वमौदार्य्यमिति कीर्त्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वदान्यः को भवेदत्र वदान्यः पुरुषोत्तमाद् ॥ ९९ ॥
अकिञ्चनाय येनात्मा निर्गुणायापि दीयते ।
सामान्या नायकगुणाः स्थिरताऽऽद्या यदप्यमी ॥ १०० ॥
तथाऽपि पूर्वतः किंचिद्विशेषात्पुनरीरिताः ।
अस्य गर्गादयो धर्म्मे युयुधानादयो युधि ॥ १०१ ॥
उद्धवाद्यास्तथा मन्त्रे सहायाः परिकीर्त्तिताः ।
तद्भावभावितस्वान्ताः कृष्णभक्ता इतीरिताः ॥ १०२ ॥
ये सत्यवाक्य इत्याद्या ह्रीमानित्यन्तिमा गुणाः ।
प्रोक्ताः कृष्णेऽस्य भक्तेषु ते विज्ञेया मनीषिभिः ॥१०३॥
ते साधकाश्च सिद्धाश्च द्विविधाः परिकीर्त्तिताः ।
उत्पन्नरतयः सम्यङ् नैर्विघ्न्यमनुपागताः ॥ १०४ ॥
कृष्णसाक्षात्कृतौ योग्याः साधका इति कीर्त्तिताः ।
बिल्वमङ्गलतुल्या ये साधकास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ १०५ ॥
अविज्ञाताखिलक्लेशाः सदा कृष्णाश्रितक्रियाः ।
सिद्धाः स्युः सततप्रेमसौख्यास्वादपरायणाः ॥ १०६ ॥
संप्राप्तसिद्धयः सिद्धा नित्यसिद्धाश्च ते द्विधा ।
साधनैः कृपया चास्य द्विधा संप्राप्तसिद्धयः ॥ १०७ ॥
मार्कण्डेयादयः प्रोक्ताः साधनैः प्राप्तसिद्धयः ॥ १०८ ॥
कृपासिद्धा यज्ञपत्नीवैरोचनिशुकादयः ।
आत्मकोटिगुणे कृष्णे प्रेमाणं परमं गताः ।
नित्यानन्दगुणाः सर्वे नित्यसिद्धा मुकुन्दवत् ॥ १०९ ॥
सनातनं मित्रमिति तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ।
स्नेहोऽस्माऽस्विति चैतेषां नित्यप्रेष्ठत्वमागतम् ॥ ११० ॥
इत्यतः कथिताः नित्यप्रिया यादवबल्लवाः ।
एषां लौकिकवच्चेष्टा लीला मुरारिपोरिव ॥ १११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये प्रोक्ताः पञ्चपञ्चाशत् क्रमात्कंसरिपोर्गुणाः ।
ते चान्ये चापि सिद्धेषु सिद्धिदत्वादयो मताः ॥ ११२ ॥
भक्तास्तु कीर्तिताः शान्तास्तथा दाससुतादयः ।
सखायो गुरुवर्गाश्च प्रेयस्यश्चेति पञ्चधा ॥ ११३ ॥
उद्दीपनास्तु ते प्रोक्ता भावमुद्दीपयन्ति ये ।
ते तु श्रीकृष्णचन्द्रस्य गुणाश्चेष्टाः प्रसाधनम् ॥ ११४ ॥
स्मिताङ्गसौरभे वंशशृङ्गनूपुरकम्बवः ।
पदाङ्कः क्षेत्रतुलसीभक्ततद्वासरादयः ॥ ११५ ॥
गुणास्तु त्रिविधा प्रोक्ताः कायवाङ्मानसाश्रयाः ।
वयःसौन्दर्य्यरूपाणि कायिका मृदुताऽऽदयः ॥ ११६ ॥
गुणाः स्वरूपमेवास्य कायिकाद्या यदप्यमी ।
भेदं स्वीकृत्य वर्ण्यन्ते तथाऽप्युद्दीपना इति ॥ ११७ ॥
अतस्तस्य स्वरूपस्य स्यादालम्बनतैव हि ।
उद्दीपनत्वमेव स्यात् भूषणादेस्तु केवलम् ॥ ११८ ॥
एषामालम्बनत्वं च तथोद्दीपनताऽपि च ।
वयः कौमारपौगण्डकैशोरमिति तत् त्रिधा ॥ ११९ ॥
कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि ।
आषोडशाच्च कैशोरं यौवनं स्यात्ततः परम् ॥ १२० ॥
औचित्यात्तत्र कौमारं वक्तव्यं वत्सले रसे ।
पौगण्डं प्रेयसि तथा तत्तत्खेलाऽऽदियोगतः ॥ १२१ ॥
श्रैष्ठ्यमुज्वल एवास्य कैशोरस्य तथाऽप्यदः ।
प्रायः सर्वरसौचित्यादत्रोदाह्रियते क्रमात् ॥ १२२ ॥
आद्यं मध्यं तथा शेषं कैशोरं त्रिविधं भवेत् ।
वर्णस्योज्ज्वलता काऽपि नेत्रान्ते चारुणच्छविः ॥ १२३ ॥
रोमावलिप्रकटता कैशोरे प्रथमे सति ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैजयन्तीशिखण्डादिनटप्रवरवेषता ॥ १२४ ॥
वंशीमधुरिमा वस्त्रशोभा चात्र परिच्छदः ।
खरताऽत्र नखाग्राणां धनुरान्दोलिता भ्रुवोः ॥ १२५ ॥
रदानां रञ्जनं रागचूर्णैरित्यादि चेष्टितम् ।
ऊरुद्वयस्य बाह्वोश्च काऽपि श्रीरुरसस्तथा ॥ १२६ ॥
मूर्त्तैर्मधुरिमाद्यं च कैशोरे सति मध्यमे ।
मुखं स्मितविकासाढ्यं विभ्रमोत्तरले दृशौ ॥ १२७ ॥
त्रिजगन्मोहनं गीतमित्यादिरिह माधुरी ।
वैदग्धीसारविस्तारः कुञ्जकेलिमहोत्सवः ॥ १२८ ॥
आरम्भो रासलीलाऽऽदेरिह चेष्टाऽऽदिसौष्ठवम् ।
पूर्वतोऽप्यधिकोत्कर्षं बाढमङ्गानि बिभ्रति ॥ १२९ ॥
त्रिवलिव्यक्तिरित्याद्यं कैशोरे चरमे सति ।
इदमेव हरेः प्राज्ञैर्नवयौवनमुच्यते ॥ १३० ॥
अत्र गोकुलदेवीनां भावसर्वस्वशालिता ।
अभूतपूर्वकन्दर्पतन्त्रलीलोत्सवादयः ॥ १३१ ॥
नेतुः स्वरूपमेवोक्तं कैशोरमिह यद्यपि ।
नानाऽऽकृतिप्रकटनात्तथाऽप्युद्दीपनं मतम् ॥ १३२ ॥
बाल्येऽपि नवतारुण्यप्राकट्यं श्रूयते क्व चित् ।
तत्रातिरसबाहित्वान्न रसज्ञैरुदाहृतम् ॥ १३३ ॥
भवेत्सौन्दर्य्यमङ्गानां सन्निवेशो यथोचितम् ।
विभूषणं विभूष्यं स्याद्येन तद्रूपमुच्यते ॥ १३४ ॥
मृदुता कोमलस्यापि संस्पर्शासहतोच्यते ।
ये नायकप्रकरणे वाचिका मानसास्तथा ॥ १३५ ॥
गुणाः प्रोक्तास्त एवात्र ज्ञेया उद्दीपना बुधैः ।
चेष्टा रासादिलीलाः स्युस्तथा दुष्टवधादयः ॥ १३६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कथितं वसनाकल्पमण्डनाद्यं प्रसाधनम् ।
नवार्करश्मिकाश्मीरहरितालादिसंनिभम् ॥ १३७ ॥
युगं चतुष्कं भूयिष्ठं वसनं त्रिविधं हरेः ।
पारिधानं ससंव्यानं युगरूपमुदीरितम् ॥ १३८ ॥
चतुष्कं कञ्चुकोष्णीषतुन्दबन्धोत्तरीयकम् ।
खण्डिताखण्डितं भूरि नटवेशक्रियोचितम् ॥ १३९ ॥
अनेकवर्णवसनं भूयिष्ठं कथितं बुधैः ॥
केशबन्धनमालेपो मालाचित्रविशेषकः ॥ १४० ॥
ताम्बूलकोलिपद्मादिराकल्पः परिकीर्त्तितः ।
स्याज्जूटः कबरी चूडा वेणी च कचबन्धनम् ॥ १४१ ॥
पाण्डुरः कर्बुरः पीत इत्यालेपस्त्रिधा मतः ।
माला त्रिधा वैजयन्ती रत्नमाला वनस्रजः ॥ १४२ ॥
अस्या वैकक्षिकापीडप्रालम्बाद्या भिदा मताः ।
मकरीपत्रभङ्गाद्यं चित्रं पीतसितारुणम् ॥ १४३ ॥
तथा विशेषकोऽपि स्यादन्यदूह्यं स्वयं बुधैः ।
किरीटं कुण्डले हारचतुष्कीवलयोर्भयः ॥ १४४ ॥
केयूरनूपुराद्यं च रत्नमण्डनमुच्यते ।
कुसुमादिकृतं चेदम् अन्यमण्डनमीरितम् ॥ १४५ ॥
धातुकल्पं च तिलकं पत्रभङ्गलताऽऽदिकम् ।
एष त्रिधा भवेद्वेणुर्मुरली वंशिकेत्यपि ॥ १४६ ॥
पाविकाख्यो भवेद्वेणुर्द्वादशाङ्गुलदैर्घ्यभाक् ।
स्थौल्येऽङ्गुष्ठमितः षड्भिरेष रन्ध्रैः समन्वितः ॥ १४७ ॥
हस्तद्वयमितायामा मुखरन्ध्रसमन्विता ।
चतुःस्वरच्छिद्रयुक्ता मुरली चारुनादिनी ॥ १४८ ॥
अर्द्धाङ्गुलान्तरोन्मानं तारादिविवराष्टकम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततः सार्द्धाङ्गुलाद्यत्र मुखरन्ध्रं तथाऽङ्गुलम् ॥ १४९ ॥
शिरो वेदाङ्गुलं पुच्छं त्र्यङ्गुलं सा तु वंशिका ।
नवरन्ध्रा स्मृता सप्तदशाङ्गुलमिता बुधैः ॥ १५० ॥
दशाङ्गुलान्तरा स्याच्चेत् सा तारमुखरन्ध्रयोः ।
महानन्देति विख्याता तथा संमोहनीति च ॥ १५१ ॥
भवेत्सूर्य्यान्तरा सा चेत्तत आकर्षणी मता ।
आनन्दनी तदा वंशी भवेदिन्द्रान्तरा यदि ॥ १५२ ॥
गोपानां वल्लभा सेयं वंशुलीति च विश्रुता ।
क्रमान्मणिमयी हैमी वैणवीति त्रिधा च सा ॥ १५३ ॥
शृङ्गं तु गवलं हेमनिबद्धाग्रिमपश्चिमम् ।
रत्नजालस्फुरन्मध्यं मन्द्रघोषाभिधं स्मृतम् ॥ १५४ ॥
कम्बुस्तु दाक्षिणावर्त्तः पाञ्चजन्यतयोच्यते ।

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ दक्षिणविभागे भक्तिरससामान्य-
निरूपणे विभावलहरी ॥ १ ॥

भक्तिरससामान्यनिरूपणेऽनुभाव
द्वितीयलहरी—

अनुभावास्तु चित्तस्थभावानामवबोधकाः ।
ते बहिर्विक्रियाप्रायाः प्रोक्ता उद्भासुराख्यया ॥ १ ॥
नृत्यं विलुठितं गीतं क्रोशनं तनुमोटनम् ।
हुङ्कारो जृम्भणं श्वासभूमा लोकानपेक्षिता ॥ २ ॥
लालास्रवोऽट्टहासश्च घूर्णा हिक्काऽऽदयोऽपि च ।
ते शीताः क्षेपणाश्चेति यथाऽर्थाख्या द्विधोदिताः ॥ ३ ॥
शीताः स्युर्गीतजृम्भाऽऽद्या नृत्याद्याः क्षेपणाभिधाः ।
हासाद्भिन्नोऽट्टहासोऽयं चित्तविक्षेपसम्भवः ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वपुरुत्फुल्लतारक्तोद्गमाद्याः स्युः परेऽपि ये ।
अतीव विरलत्वात्ते नैवात्र परिकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ दक्षिणविभागे भक्तिरससामान्य-
निरूपणेऽनुभावलहरी ॥ २ ॥

भक्तिरस सामान्य निरूपणे सात्त्विक
तृतीयलहरी—

कृष्णसम्बन्धिभिः साक्षात्किञ्चिद्वा व्यवधानतः ।
भावैश्चित्तमिहाक्रान्तं सत्त्वमित्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥
सत्त्वादस्मात् समुत्पन्ना ये भावास्ते तु सात्त्विकाः ।
स्निग्धा दिग्धास्तथा रूक्षा इत्यमी त्रिविधा मताः ॥ २ ॥
स्निग्धास्तु सात्त्विका मुख्या गौणाश्चेति द्विधा मताः ।
आक्रमान्मुख्यया रत्या मुख्याः स्युः सात्त्विका अमी ॥ ३ ॥
विज्ञेयः कृष्णसम्बन्धः साक्षादेवात्र सूरिभिः ।
मुख्यः स्तम्भोऽयमित्थं ते ज्ञेयाः स्वेदादयोऽपि च ॥ ४ ॥
रत्याऽऽक्रमणतः प्रोक्ता गौणास्ते गौणभूतया ।
अत्र कृष्णस्य सम्बन्धः स्यात् किञ्चिद्व्यवधानतः ॥ ५ ॥
रतिद्वयविनाभूतैर्भावैर्मनस आक्रमात् ।
जने जातरतौ दिग्धास्ते चेद्रत्यनुगामिनः ॥ ६ ॥
कम्पो रत्यनुगामित्वादसौ दिग्ध इतीर्य्यते ।
मधुराश्चर्य्यतद्वार्त्तोत्पन्नैर्मुद्विस्मयादिभिः ॥ ७ ॥
जाता भक्तोपमे रूक्षा रतिशून्ये जने क चित् ।
चित्तं सत्त्वीभवत् प्राणे न्यस्यत्यात्मानमुद्भटम् ॥ ८ ॥
प्राणस्तु विक्रियां गच्छन् देहं विक्षोभयत्यलम् ।
तदा स्तम्भादयो भावा भक्तदेहे भवन्त्यमी ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ते स्तम्भस्वेदरोमाञ्चाः स्वरभेदोऽथ वेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥ १० ॥
चत्वारि क्ष्माऽऽदिभूतानि प्राणो जात्ववलम्बते ।
कदा चित्स्वप्रधानः सन् देहे चरति सर्वतः ॥ ११ ॥
स्तम्भं भूमिस्थितः प्राणस्तनोत्यश्रु जलाश्रयः ।
तेजस्थः स्वेदवैवर्ण्ये प्रलयं वियदाश्रितः ॥ १२ ॥
स्वस्थ एव क्रमान्मन्दमध्यतीव्रत्वभेदभाक् ।
रोमाञ्चकम्पवैश्वर्य्याण्यत्र त्रीणि तनोत्यसौ ॥ १३ ॥
बहिरन्तश्च विक्षोभविधायित्वादतः स्फुटम् ।
प्रोक्ताऽनुभावताऽमीषां भावता च मनीषिभिः ॥ १४ ॥
स्तम्भो हर्षभयाश्चर्य्यविषादामर्षसम्भवः ।
तत्र वागादिराहित्यं नैश्चल्यं शून्यताऽऽदयः ॥ १५ ॥
स्वेदो हर्षभयक्रोधादिजः स्वेदकरस्तनौ ।
रोमाञ्चोऽयं किलाश्चर्य्यहर्षोत्साहभयादिजः ॥ १६ ॥
रोम्णामभ्युद्गमस्तत्र गात्रसंस्पर्शनादयः ।
विषादविस्मयामर्षहर्षभीत्यादिसम्भवम् ॥ १७ ॥
वैश्वर्य्यं स्वरभेदः स्यादेष गद्गदिकाऽऽदिकृत् ।
वित्रासामर्षहर्षाद्यैर्वेपथुर्गात्रलौल्यकृत् ॥ १८ ॥
विषादरोषभीत्यादेर्वैवर्ण्यं वर्णविक्रिया ।
भावज्ञैरत्र मालिन्यकार्श्याद्या परिकीर्त्तिताः ॥ १९ ॥
विषादे श्वेतिमा प्रोक्तो धौसर्यं कालिमा क्व चित् ।
रोषे तु रक्तिमा भीत्यां कालिमा क्वापि शुक्लिमा ॥ २० ॥
रक्तिमा लक्ष्यते व्यक्तो हर्षोद्रेकेऽपि कुत्र चित् ।
अत्रासार्वत्रिकत्वेन नैवास्योदाहृतिः कृता ॥ २१ ॥
हर्षरोषविषादाद्यैरश्रु नेत्रे जलोद्गमः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हर्षजेऽश्रुणि शीतत्वमौष्ण्यं रोषादिसम्भवे ॥ २२ ॥
सर्वत्र नयनक्षोभरागसंमार्जनादयः ।
प्रलयः सुखदुःखाभ्यां चेष्टाज्ञाननिराकृतिः ॥ २३ ॥
तत्रानुभावाः कथिताः महीनिपतनादयः ।
सर्वे हि सत्त्वमूलत्वाद्भावा यद्यपि सात्त्विकाः ॥ २४ ॥
तथाऽप्यमीषां सत्त्वैकमूलत्वात्सात्त्विकप्रथा ।
सत्त्वस्य तारतम्यात्प्राणतनुक्षोभतारतम्यं स्यात् ॥ २५ ॥
तत एव तारतम्यं सर्वेषां सात्त्विकानां स्यात् ।
धूमायितास्ते ज्वलिता दीप्ता उद्दीप्तसंज्ञिताः ॥ २६ ॥
वृद्धिं यथोत्तरं यान्तः सात्त्विकाः स्युश्चतुर्विधाः ।
सा भूरिकालव्यापित्वं बह्वङ्गव्यापिताऽपि च ॥ २७ ॥
स्वरूपेण तथोत्कर्ष इति वृद्धिस्त्रिधा भवेत् ।
तत्र नेत्राम्बुवैस्वर्यवर्जानामेव युज्यते ॥ २८ ॥
बह्वङ्गव्यापिताऽमीषां तयोः काऽपि विशिष्टता ।
तत्राश्रूणां दृगौच्छून्यकारित्वमवदातता ॥ २९ ॥
तथा ताराऽतिवैचित्रीवैक्षलक्षण्यविधायिता ।
वैस्वर्य्यस्य तु भिन्नत्वे कौण्ठ्यव्याकुलताऽऽदयः ॥ ३० ॥
भिन्नत्वं स्थानविभ्रंशः कौण्ठ्यं स्यात्सन्नकण्ठता ।
व्याकुलत्वं तु नानोच्चनीचगुप्तविलुप्तता ॥ ३१ ॥
प्रायो धूमायिता एव रूक्षास्तिष्ठन्ति सात्त्विकाः ।
सर्वानन्दचमत्कारहेतुर्भावो वरो रतिः ॥ ३२ ॥
एते हि तद्विनाभावान्न चमत्कारिताऽऽश्रयाः ।
अद्वितीया अमी भावा अथ वा सद्वितीयकाः ॥ ३३ ॥
ईषद्व्यक्ता अपन्होतुं शक्या धूमायिता मताः ।
ते द्वौ त्रयो वा युगपद्यान्तः सुप्रकटां दशाम् ॥ ३४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्याः कृच्छ्रेण निन्होतुं ज्वलिता इति कीर्त्तिताः ।
प्रौढां त्रिचतुरा व्यक्तिं पञ्च वा युगपद्गताः ॥ ३५ ॥
संवरीतुमशक्यास्ते दीप्ता धीरैरुदाहृताः ।
एकदा व्यक्तिमापन्नाः पञ्चषाः सर्व एव वा ॥ ३६ ॥
आरूढाः परमोत्कर्षमुद्दीप्ता इति शब्दिताः ।
उद्दीप्ता एव सूद्दीप्ता महाभावे भवन्त्यमी ॥ ३७ ॥
सर्व एव परां कोटिं सात्त्विका यत्र बिभ्रति ।
अथात्र सात्त्विकाभासा विलिख्यन्ते चतुर्विधाः ॥ ३८ ॥
रत्याभासभवास्ते तु सत्त्वाभासभवास्तथा ।
निःसत्त्वाश्च प्रतीपाश्च यथापूर्वममी वराः ॥ ३९ ॥
मुमुक्षुप्रमुखेष्वाद्या रत्याभासात्पुरोदितात् ।
मुद्विस्मयादेराभासः प्रोद्यन् जात्या श्लथे हृदि ॥ ४० ॥
सत्त्वाभास इति प्रोक्तः सत्त्वाभासभवास्ततः ।
जरन्मीमांसकस्यापि शृण्वतः कृष्णविभ्रमम् ॥ ४१ ॥
हृष्टायमानमनसो बभूवोत्पुलकं वपुः ।
निसर्गपिच्छिलस्वान्ते तदभ्यासपरेऽपि च ॥ ४२ ॥
सत्त्वाभासं विनाऽपि स्युः क्वाप्यश्रुपुलकादयः ।
प्रकृत्या शिथिलं येषां मनः पिच्छिलमेव वा ॥ ४३ ॥
तेष्वेव सात्त्विकाभासः प्रायः संसदि जायते ।
हितादन्यत्र कृष्णस्य प्रतीपाः क्रुद्धयादिभिः ॥ ४४ ॥
नास्त्यर्थः सात्त्विकाभासकथने कोऽपि यद्यपि ।
सात्त्विकानां विवेकाय दिक् तथाऽपि प्रदर्शिता ॥ ४५ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ दक्षिणविभागे भक्तिरससामान्य-
निरूपणे सात्त्विकलहरी ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्तिरससामान्यनिरूपणे व्यभिचारि

चतुर्थलहरी—

अथोच्यन्ते त्रयस्त्रिंशद्भावा ये व्यभिचारिणः ।
विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति ॥ १ ॥
वागङ्गसत्त्वसूच्या ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः ।
संचारयन्ति भावस्य गतिं संचारिणोऽपि ते ॥ २ ॥
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति स्थायिन्यमृतवारिधौ ।
ऊर्म्मिवद्वर्द्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपतां च ते ॥ ३ ॥
निर्वेदोऽथ विषादो दैन्यं ग्लानिश्रमौ च मदगर्वौ ।
शङ्कात्रासावेगा उन्मादापस्मृती तथा व्याधिः ॥ ४ ॥
मोहो मृतिरालस्यं जाड्यं व्रीडाऽवहित्था च ।
स्मृतिरथ वितर्कचिन्तामतिधृतयो हर्ष उत्सुकत्वं च ॥ ५ ॥
औग्र्यामर्षासूयाश्चापल्यं चैव निद्रा च ।
सुप्तिर्बोध इतीमे भावा व्यभिचारिणः समाख्याताः ॥ ६ ॥
महाऽऽर्त्तिविप्रयोगेर्ष्यासद्विवेकादिकल्पितम् ।
स्वावमाननमेवात्र निर्वेद इति कथ्यते ॥ ३७ ॥
अत्र चिन्ताऽश्रुवैवर्ण्यदैन्यनिश्वसितादयः ।
अमङ्गलमपि प्रोच्य निर्वेदं प्रथमं मुनिः ॥ ८ ॥
मेनेऽमुं स्थायिनं शान्त इति जल्पन्ति के चन ।
इष्टानवाप्तिप्रारब्धकार्य्यासिद्धिविपत्तितः ॥ ९ ॥
अपराधादितोऽपि स्यादनुतापो विषण्णता ।
अत्रोपायसहायानुसंधिश्चिन्ता च रोदनम् ॥ १० ॥
विलापश्वासवैवर्ण्यमुखशोषादयोऽपि च ।
दुःखत्रासापराधाद्यैरनौर्ज्जित्यं तु दीनता ॥ ११ ॥
चाटुकृन्मान्द्यमालिन्यचिन्ताऽङ्गजडिमादिकृत् ।
ओजः सोमात्मकं देहे बलपुष्टिकृदस्य तु ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्षयाच्छ्रमाधिरत्याद्यैर्ग्लानिर्निष्प्राणता मता ।
कम्पाङ्गजाड्यवैवर्ण्यकार्श्यदृग्भ्रमणादिकृत् ॥ १३ ॥
अध्वनृत्यरताद्युत्थः खेदः श्रम इतीर्य्यते ।
निद्रास्वेदाङ्गसंमर्द्दजृम्भाश्वासादिभागसौ ॥ १४ ॥
विवेकहर उल्लासो मदः स द्विविधो मतः ।
मधुपानभवोऽनङ्गविक्रियाभरजोऽपि च ॥ १५ ॥
गत्यङ्गवाणीस्खलनदृग्घूर्णारक्तिमादिकृत् ।
उत्तमस्तु मदाच्छेते मध्यो हसति गायति ॥ १६ ॥
कनिष्ठः क्रोशति स्वैरं परुषं वक्ति रोदिति ।
मदोऽपि त्रिविधः प्रोक्तस्तरुणादिप्रभेदतः ॥ १७ ॥
अत्र नात्युपयोगित्वाद्विस्तार्य्य न हि वर्णितः ।
सौभाग्यरूपतारूण्यगुणसर्वोत्तमाश्रयैः ॥ १८ ॥
इष्टलाभादिना चान्यहेलनं गर्व ईर्य्यते ।
तत्र सोल्लुण्ठवचनं लीलाऽनुत्तरदायिता ॥ १९ ॥
स्वाङ्गेक्षा निन्हवोऽन्यस्य वचनाश्रवणादयः ।
स्वीयचौर्य्यापराधादेः परक्रौर्य्यादितस्तथा ॥ २० ॥
स्वानिष्टोत्प्रेक्षणं यत्तु सा शङ्केत्यभिधीयते ।
अत्रास्यशोषवैवर्ण्यदिक्प्रेक्षालीनताऽऽदयः ॥ २१ ॥
शङ्का तु प्रवरस्त्रीणां भीरुत्वाद्भयकृद्भवेत् ।
त्रासः क्षोभो हृदि तडिद्घोरसत्त्वोग्रनिस्वनैः ॥ २२ ॥
पार्श्वस्थालम्बरोमाञ्चकम्पस्तम्भभ्रमादिकृत् ।
गात्रोत्कम्पी मनःकम्पः सहसा त्रास उच्यते ॥ २३ ॥
पूर्वापरविचारोत्थं भयं त्रासात्पृथग्भवेत् ।
चित्तस्य संभ्रमो यः स्यादावेगोऽयं स चाष्टधा ॥ २४ ॥
प्रियाप्रियानलमरुद्वर्षोत्पातगजारितः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रियोत्थे पुलकः सान्त्वं चापलाभ्युद्गमादयः ॥ २५ ॥
अप्रियोत्थे तु भूपातविक्रोशभ्रमणादयः ।
व्यत्यस्तगतिकम्पाक्षिमीलनास्रादयोऽग्निजे ॥ २६ ॥
वातजेऽङ्गावृतिक्षिप्रगतिदृङ्मार्जनादयः ।
वृष्टिजो धावनच्छत्रगात्रसंकोचनादिकृत् ॥ २७ ॥
उत्पाते मुखवैवर्ण्यविस्मयोत्कम्पिताऽऽदयः ।
गाजे पलायनोत्कम्पत्रासपृष्ठेक्षणादयः ॥ २८ ॥
अरिजो वर्म्मशस्त्रादिग्रहापसरणादिकृत् ।
गजेन दुष्टसत्त्वोऽन्योऽप्यश्वादिरुपलक्ष्यते ॥ २९ ॥
आवेगाभास एवायं पराश्रयतयाऽपि चेत् ।
नायकोत्कर्षबोधाय तथाऽऽप्यत्र निदर्शितः ॥ ३० ॥
उन्मादौ हृद्भ्रमः प्रौढानन्दापद्विरहाधिजः ।
अत्राट्टहासो नटनं सङ्गीतं व्यर्थचेष्टितम् ॥ ३१ ॥
प्रलापधावनाक्रोशविपरीतक्रियाऽऽदयः ।
उन्मादः पृथगुक्तोऽयं व्याधिष्वन्तर्भवन्नपि ॥ ३२ ॥
यत्तत्र विप्रलम्भादौ वैचित्रीं कुरुते पराम् ।
अधिरूढे महाभावे मोहनत्वमुपागते ॥ ३३ ॥
अवस्थाऽन्तरमाप्तोऽसौ दिव्योन्माद इतीर्यते ।
दुःखोत्थो वातवैषम्याद्युद्भूतश्चित्तविप्लवः ॥ ३४ ॥
अपस्मारोऽत्र पतनं धावनास्फोटनभ्रमाः ।
कम्पः फेनस्रुतिर्बाहुक्षेपोऽथ क्रोशनादयः ॥ ३५ ॥
उन्मादवदिह व्याधिविशेषोऽप्येष वर्णितः ।
परां भयानकाभासे यत्करोति चमत्कृतिम् ॥ ३६ ॥
दोषोद्रेकवियोगाद्यैर्व्याधयो ये ज्वरादयः ।
इह तत्प्रभवो भावो व्याधिरित्यभिधीयते ॥ ३७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र स्तम्भश्लथाङ्गत्वश्वासोत्तापक्लमादयः ।
मोहो हृन्मूढता हर्षाद्विश्लेषाद्भयतस्तथा ॥ ३८ ॥
विषादादेश्च तत्र स्याद्देहस्य पतनं भुवि ।
शून्येन्द्रियत्वं भ्रमणं तथा निश्चेष्टतामयः ॥ ३९ ॥
अस्यान्यत्रात्मपर्य्यन्ते स्यात्सर्वत्रैव मूढता ।
कृष्णस्फूर्त्तिविशेषस्तु न कदाऽप्यत्र लीयते ॥ ४० ॥
विषादव्याधिसंत्राससम्प्रहारक्लमादिभिः ।
प्राणत्यागो मृतिस्तस्यामव्यक्ताक्षरभाषणम् ॥ ४१ ॥
विवर्णगात्रताश्वासमान्द्यहिक्काऽऽदयः क्रियाः ।
प्रायोऽत्र मरणात्पूर्वा चित्तवृत्तिर्मृतिर्मता ॥ ४२ ॥
मृतिरत्रानुभावः स्यादिति केन चिदुच्यते ।
किन्तु नायकवीर्य्यार्थं शत्रौ मरणमुच्यते ॥ ४३ ॥
सामर्थ्यस्यापि सद्भावे क्रियाऽनुन्मुखता हि या ।
तृप्तिश्रमादिसम्भूता तदालम्ब्यमुदीर्य्यते ॥ ४४ ॥
अत्राङ्गभङ्गो जृम्भा च क्रियाद्वेषोऽक्षिमर्द्दनम् ।
शय्याऽऽसनैकप्रियता तन्द्रानिद्राऽऽदयोऽपि च ॥ ४५ ॥
जाड्यमप्रतिपत्तिः स्यानिष्टानिष्टश्रुतीक्षणैः ।
विरहाद्यैश्च तन्मोहात्पूर्वावस्था पराऽपि च ॥ ४६ ॥
अत्रानिमिषता तूष्णींभावविस्मरणादयः ।
नवीनसङ्गमाकार्य्यस्तवावज्ञादिना कृता ॥ ४७ ॥
अधृष्टता भवेद् व्रीडा तत्र मौनं विचिन्तनम् ।
अवगुण्ठभूलेखौ तथाऽधोमुखताऽऽदयः ॥ ४८ ॥
अवहित्थाऽऽकारगुप्तिर्भवेद्भावेन केन चित् ।
अत्राङ्गादेः पराभ्यूहस्थानस्य परिगूहनम् ॥ ४९ ॥
अन्यत्रेक्षा वृथाचेष्टा वाग्भङ्गीत्यादयः क्रियाः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभावपिधानार्थोऽवहित्थं भाव उच्यते ॥ ५० ॥
हेतुः कश्चिद्भवेत् कश्चिद्गोप्यः कश्चन गोपनः ।
इति भावत्रयस्यात्र विनियोगः समीक्ष्यते ॥ ५१ ॥
हेतुत्वं गोपनत्वं च गोप्यत्वं चात्र सम्भवेत् ।
प्रायेण सर्वभावानामेकशोऽनेकशोऽपि च ॥ ५२ ॥
या स्यात् पूर्वानुभूतार्थप्रतीतिः सदृशेक्षया ।
दृढाभ्यासादिना वाऽपि सा स्मृतिः परिकीर्त्तिता ॥ ५३ ॥
भवेदत्र शिरःकम्पो भ्रूविक्षेपादयोऽपि च ।
विमर्शात् संशयादेश्च वितर्कस्तूह उच्यते ॥ ५४ ॥
एष भ्रूक्षेपणशिरोऽङ्गुलिसञ्चालनादिकृत् ।
विनिर्णयान्त एवायं तर्क इत्यूचिरे परे ॥ ५५ ॥
ध्यानं चिन्ता भवेदिष्टानाप्त्यनिष्टाप्तिनिर्मितम् ।
श्वासाधोमुखभूलेखवैवर्ण्योन्निद्रता इह ॥ ५६॥
विलापोत्तापकृशताबाष्पदैन्यादयोऽपि च ।
शास्त्रादीनां विचारोत्थमर्थनिर्धारणं मतिः ॥ ५७ ॥
अत्र कर्त्तव्यकरणं संशयभ्रमयोश्छिदा ।
उपदेशश्च शिष्याणामूहापोहादयोऽपि च ॥ ५८ ॥
धृतिः स्यात्पूर्णताज्ञानदुःखाभावोत्तमाप्तिभिः ।
अप्राप्तातीतनष्टार्थानभिसंशोचनादिकृत् ॥ ५९ ॥
अभीष्टेक्षणलाभादिजाता चेतःप्रसन्नता ।
हर्षः स्यादिह रोमाञ्चः स्वेदोऽश्रु मुखफुल्लता ॥ ६० ॥
आवेगोन्मादजडतास्तथा मोहादयोऽपि च ।
कालाक्षमत्वमौत्सुक्यमिष्टेक्षाऽऽप्तिस्पृहाऽऽदिभिः ॥ ६१ ॥
मुखशोषत्वराचिन्तानिश्वासास्थिरताऽऽदिकृत् ।
अपराधदुरुक्त्यादिजातं चण्डत्वमुग्रता ॥ ६२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वधबन्धशिरःकम्पभर्त्सनोत्ताडनादिकृत् ।
अधिक्षेपापमानादेः स्यादमर्षोऽसहिष्णुता ॥ ६३ ॥
तत्र स्वेदः शिरःकम्पो विवर्णत्वं विचिन्तनम् ।
उपायान्वेषणाक्रोशवैमुख्योत्ताडनादयः ॥ ६४ ॥
द्वेषः परोदयेऽसूया स्यात्सौभाग्यगुणादिभिः ।
तत्रेर्ष्याऽनादराक्षेपा दोषारोपो गुणेष्वपि ॥ ६५ ॥
अपवृत्तिस्तिरोवीक्षा भ्रुवो भङ्गुरताऽऽदयः ।
रागद्वेषादिभिश्चित्तलाघवं चापलं भवेत् ॥ ६६ ॥
तत्राविचारपारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः ।
चिन्तालस्यनिसर्गक्लमादिभिश्चित्तमीलनं निद्रा ॥ ६७ ॥
तत्राङ्गभङ्गजृम्भाजाड्यश्वासाक्षिमीलनानि स्युः ।
युक्ताऽस्य स्फूर्त्तिमात्रेण निर्विशेषेण केन चित् ॥ ६८ ॥
हृन्मीलनात्पुरोऽवस्था निद्रा भक्तेषु कथ्यते ।
सुप्तिर्निद्राविभावा स्यान्नानाऽर्थानुभवात्मिका ॥ ६९ ॥
इन्द्रियोपरतिश्वासनेत्रसंमीलनादिकृत् ।
अविद्यामोहनिद्रादिध्वंसाद् बोधः प्रबुद्धता ॥ ७० ॥
अविद्याध्वंसतो बोधो विद्योदयपुरःसरः ।
अशेषक्लेशविश्रान्तिस्वरूपावगमादिकृत् ॥ ७१ ॥
बोधो मोहक्षयाच्छब्दगन्धस्पर्शरसैर्हरेः ।
दृगुन्मीलनरोमाञ्चाधरोत्थानादिकृद्भवेत् ॥ ७२ ॥
बोधो निद्राक्षयात्स्वप्ननिद्रापूर्त्तिस्वनादिभिः ।
तत्राक्षिमर्द्दनं शय्यामोक्षोऽङ्गवलनादयः ॥ ७३ ॥
इति भावास्त्रयस्त्रिंशत्कथिता व्यभिचारिणः ।
श्रेष्ठमध्यकनिष्ठेषु वर्णनीया यथोचितम् ॥ ७४ ॥
मात्सर्य्योद्वेगदम्भेर्ष्या विवेको निर्णयस्तथा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्लैब्यं क्षमा च कुतुकमुत्कण्ठा विनयोऽपि च ॥ ७५ ॥
संशयो धार्ष्ट्यमत्याद्या भावा ये स्युः परेऽपि च ।
उक्तेष्वन्तर्भवन्तीति न पृथक्त्वेन दर्शिताः ॥ ७६ ॥
असूयायां तु मात्सर्य्यं त्रासेऽप्युद्वेग एव तु ।
दम्भस्तथाऽवहित्थायामीर्ष्याऽमर्षे मतावुभौ ॥ ७७ ॥
विवेको निर्णयश्चैमौ दैन्ये क्लैब्यं क्षमा धृतौ ।
औत्सुक्ये कुतुकोत्कण्ठे लज्जायां विनयस्तथा ॥ ७८ ॥
संशयोऽन्तर्भवेत्तर्के तथा धार्ष्ट्यं च चापले ।
एषां संचारिभावानां मध्ये कश्चन कस्य चित् ॥ ७९ ॥
विभावश्चानुभावश्च भवेदेव परस्परम् ।
निर्वेदे तु यथेर्ष्याया भवेदत्र विभावता ॥ ८० ॥
असूयायां पुनस्तस्या व्यक्तमुक्ताऽनुभावता ।
औत्सुक्यं प्रति चिन्तायाः कथिताऽत्रानुभावता ॥ ८१ ॥
निद्रां प्रति विभावत्वमेवं ज्ञेयाः परेऽप्यमी ।
एषां च सात्त्विकानां च तथा नानाक्रियाततेः ॥ ८२ ॥
कार्य्यकारणभावस्तु ज्ञेयः प्रायेण लोकतः ।
निन्दायास्तु विभावत्वं वैवर्ण्यामर्षयोर्मतम् ॥ ८३ ॥
असूयायां पुनस्तस्याः कथितैवानुभावता ।
प्रहारस्य विभावत्वं संमोहप्रलयौ प्रति ॥ ८४ ॥
औग्र्यं प्रत्यनुभावत्वमेवं ज्ञेयाः परेऽपि च ।
त्रासनिद्राश्रमालस्यमदभिद्बोधवर्जिनाम् ॥ ८५ ॥
संचारिणामिह क्वापि भवेद्रत्यनुभावता ॥ ८६ ॥
साक्षाद्रतेन सम्बन्धः षड्भिस्त्रासादिभिः सह ।
स्यात्परम्परया किन्तु लीलाऽनुगुणताकृते ॥ ८७ ॥
वितर्कमतिनिर्वेदधृतीनां स्मृतिहर्षयोः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बोधभिद्दैन्यसुप्तीनां क चिद्रतिविभावता ॥ ८८ ॥
परतन्त्राः स्वतन्त्राश्चेत्युक्ताः संचारिणो द्विधा ॥
वरावरतया प्रोक्ताः परतन्त्रा अपि द्विधा ॥ ८९ ॥
साक्षाद् व्यवहितश्चेति वरोऽप्येष द्विधोदितः ।
मुख्यामेव रतिं पुष्णन् साक्षादित्यभिधीयते ॥ ९० ॥
पुष्णाति यो रतिं गौणीं स तु व्यवहितो मतः ।
निर्वेदः क्रोधवश्यत्वादयं व्यवहितो रतेः ॥ ९१ ॥
रसद्वयस्याप्यङ्गत्वमगच्छन्नवरो मतः ।
घोरक्रियाऽऽद्यनुभवादाच्छाद्य सहजां रतिम् ॥ ९२ ॥
दुर्वाराऽऽविरभूद्भीतिर्मोहोऽयं भीवशस्ततः ।
सदैव पारतन्त्र्येऽपि क चिदेषां स्वतन्त्रता ॥ ९३ ॥
भूपालसेवकस्येव प्रवृत्तस्य करग्रहे ।
भावज्ञे रतिशून्यश्च रत्यनुस्पर्शनस्तथा ॥ ९४ ॥
रतिगन्धिश्च ते त्रेधा स्वतन्त्राः परिकीर्त्तिताः ।
जनेषु रतिशून्येषु रतिशून्यो भवेदसौ ॥ ९५ ॥
यः स्वतो रतिगन्धेन विहीनोऽपि प्रसङ्गतः ।
पश्चाद्रतिं स्पृशेदेष रत्यनुस्पर्शनो मतः ॥ ९६ ॥
यः स्वान्तर्व्येऽपि तद्गन्धं रतिगन्धिर्व्यनक्ति सः ।
आभासः पुनरेतेषामस्थाने वृत्तितो भवेत् ॥ ९७ ॥
प्रातिकूल्यमनौचित्यमस्थानत्वं द्विधोदितम् ।
विपक्षे वृत्तिरेतेषां प्रातिकूल्यमितीर्य्यते ॥ ९८ ॥
असत्यत्वमयोग्यत्वमनौचित्यं द्विधा भवेत् ।
अप्राणिनि भवेदाद्यं तिर्य्यगादिषु चान्तिमम् ॥ ९९ ॥
वहमानेष्वपि सदा ज्ञानविज्ञानमाधुरीम् ।
कदम्बादिषु सामान्यदृष्ट्याऽऽभासत्वमुच्यते ॥ १०० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावानां क चिदुत्पत्तिसन्धिशाबल्यशान्तयः ।
दशाश्चतस्र एतासामुत्पत्तिस्त्विह सम्भवः ॥ १०१ ॥
सरूपयोर्भिन्नयोर्वा सन्धिः स्याद्भावयोर्युतिः ।
सन्धिः सरूपयोस्तत्राभिन्नहेतूत्थयोर्मतः ॥ १०२ ॥
भिन्नयोर्हेतुनैकेन भिन्नेनाप्युपजातयोः ।
एकेन जायमानानामनेकेन च हेतुना ॥ १०३ ॥
बहूनामपि भावानां सन्धिः स्फुटमवेक्ष्यते ।
शबलत्वं तु भावानां सम्मर्दः स्यात्परस्परम् ॥ १४ ॥
अत्यारूढस्य भावस्य विलयः शान्तिरुच्यते ।
शब्दार्थरसवैचित्री वाचि का चन नास्ति मे ॥ १०५ ॥
यथा कथं चिदेवोक्तं भावोदाहरणं परम् ।
त्रयस्त्रिंशदिमेऽष्टौ च वक्ष्यन्ते स्थायिनश्च ये ॥ १०६ ॥
मुख्यभावाभिधास्त्वेकचत्वारिंशदमी स्मृताः ।
शरीरेन्द्रियवर्गस्य विकाराणां विधायकाः ॥ १०७ ॥
भावा विभावजनिताश्चित्तवृत्तय ईरिताः ।
क चित्स्वाभाविको भावः कश्चिदागन्तुकः क चित् ॥ १०८ ॥
यस्तु स्वाभाविको भावः स व्याप्यान्तर्बहिःस्थितः ।
मञ्जिष्ठाऽऽद्ये यथा द्रव्ये रागस्तन्मय ईक्ष्यते ॥ १०९ ॥
अत्र स्यान्नाममात्रेण विभावस्य विभावता ।
एतेन सहजेनैव भावेनानुगता रतिः ॥ ११० ॥
एकरूपाऽपि या भक्ते विविधा प्रतिभात्यसौ ।
आगन्तुकस्तु यो भावः पटादौ रक्तिमेव सः ॥ १११ ॥
तैस्तैर्विभावैरेवायं धीयते दीप्यतेऽपि च ।
विभावनादिवैशिष्ट्याद्भक्तानां भेदतस्तथा ॥ ११२ ॥
प्रायेण सर्वभावानां वैशिष्ट्यमुपजायते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विविधानां तु भक्तानां वैशिष्ट्याद्विविधं मनः ॥ ११३ ॥
मनोऽनुसाराद्भवानां तारतम्यं किलोदये ।
चित्ते गरिष्ठे गम्भीरे महिष्ठे कर्कशादिके ॥ ११४ ॥
सम्यगुन्मीलिताश्चामी न लक्ष्यन्ते स्फुटं जनैः ।
चित्ते लघिष्ठे चोत्ताने क्षोदिष्ठे कोमलादिके ॥ ११५ ॥
मनागुन्मीलिताश्चामी लक्ष्यन्ते बहिरुल्वणाः ।
गरिष्ठं स्वर्णपिण्डाभं लघिष्ठं तूलपिण्डवत् ॥ ११६ ॥
चित्तयुग्मेऽत्र विज्ञेया भावस्य पवनोपमा ।
गम्भीरं सिन्धुवाच्चित्तमुत्तानं पल्वलादिवत् ॥ ११७ ॥
चित्तद्वयेऽत्र भावस्य महाद्रिशिखरोपमा ।
पत्तनाभं महिष्ठं स्यात् क्षोदिष्ठं तु कुटीरवत् ॥ ११८ ॥
चित्तयुग्मेऽत्र भावस्य दीपेनेभेन वोपमा ।
कर्कशं त्रिविधं प्रोक्तं बज्रं स्वर्णं तथा जतु ॥ ११९ ॥
चित्तत्रयेऽत्र भावस्य ज्ञेया वैश्वानरोपमा ।
अत्यन्तकठिनं बज्रमकुतश्चनमार्द्दवम् ॥ १२० ॥
ईदृशं तापसादीनां चित्तं तावदवेक्ष्यते ।
स्वर्णं द्रवति भावाग्नेस्तापेनातिगरीयसा ॥ १२१ ॥
जतु द्रवत्वमायाति तापलेशेन सर्वतः ।
कोमलं च त्रिधैवोक्तं मदनं नवनीतकम् ॥ २१२ ॥
अमृतं चेति भावोऽत्र प्रायः सूर्य्यातपायते ।
द्रवेदत्राद्ययुगलमातपेन यथायथम् ॥ १२३ ॥
द्रवीभूतं स्वभावेन सर्वदैवामृतं भवेत् ।
गोविन्दप्रेष्ठवर्य्याणां चित्तं स्यादमृतं किल ॥ १२४ ॥
कृष्णभक्तविशेषस्य गरिष्ठत्वादिभिर्गुणैः ।
समवेतं सदाऽमीभिर्द्वित्रैरपि मनो भवेत् ॥ १२५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु सुष्ठु महिष्ठत्वं भावो बाढमुपागतः ।
सर्वप्रकारमेवेदं चित्तं विक्षोभयत्यलम् ॥ १२६ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ दक्षिणविभागे भक्तिरससामान्यनिरूपणे व्यभिचारिलहरी ॥ ४ ॥

भक्तिरस सामान्य निरूपणे स्थायिभाव

पञ्चमलहरी—

अविरुद्धान् विरुद्धांश्च भावान् यो वशतां नयन् ।
सुराजेव विराजेत स स्थायी भाव उच्यते ॥ १ ॥
स्थायी भावोऽत्र सम्प्रोक्तः श्रीकृष्णविषया रतिः ।
मुख्या गौणी च सा द्वेधा रसज्ञैः परिकीर्त्तिता ।
शुद्धसत्त्वविशेषात्मा रतिर्मुख्येति कीर्त्तिता ।
मुख्याऽपि द्विविधा स्वार्था परार्था चेति कीर्त्यते ॥ ३ ॥
अविरुद्धैः स्फुटं भावैः पुष्णात्यात्मानमेव या ।
विरुद्धैर्दुःशकग्लानिः सा स्वार्था कथिता रतिः ॥ ४ ॥
अविरुद्धं विरुद्धं च सङ्कुचन्ती स्वयं रतिः ।
या भावमनुगृह्णाति सा परार्था निगद्यते ॥ ५ ॥
शुद्धा प्रीतिस्तथा सख्यं वात्सल्यं प्रियतेत्यसौ ।
स्वपरार्थैव सा मुख्या पुनः पञ्चविधा भवेत् ॥ ६ ॥
वैशिष्ट्यं पात्रवैशिष्ट्याद्रतिरेषोपगच्छति ।
यथाऽर्कः प्रतिबिम्बात्मा स्फटिकादिषु वस्तुषु ॥ ७ ॥
सामान्याऽसौ तथा स्वच्छा शान्तिश्चेत्यादिमा त्रिधा ।
एषाऽङ्गकम्पतानेत्रमीलनोन्मीलनादिकृत् ॥ ८ ॥
कञ्चिद्विशेषमप्राप्ता साधारणजनस्य या ।
बालिकाऽऽदेश्च कृष्णे स्यात् सामान्या सा रतिर्मता ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्तत्साधनतो नानाविधभक्तप्रसङ्गतः ।
साधकानां तु वैविध्यं यान्ती स्वच्छा रतिर्मता ॥ १० ॥
यदा यादृशि भक्ते स्यादासक्तिस्तादृशं तदा ।
रूपं स्फटिकवद्धत्ते स्वच्छाऽसौ तेन कीर्त्तिता ॥ ११ ॥
अनाचान्तधियां तत्तद्भावनिष्ठा सुखार्णवे ।
आर्य्याणामतिशुद्धानां प्रायः स्वच्छा रतिर्भवेत् ॥ १२ ॥
मानसे निर्विकल्पत्वं शम इत्यभिधीयते ।
विहाय विषयौन्मुख्यं निजानन्दस्थितिर्यतः ॥ १३ ॥
आत्मनः कथ्यते सोऽत्र स्वभावः शम इत्यसौ ।
प्रायः शमप्रधानानां ममतागन्धवर्जिता ॥ १४ ॥
परमात्मतया कृष्णे जाता शान्ती रतिर्मता ।
अग्रतो वक्ष्यमाणैस्तु स्वादैः प्रीत्यादिसंश्रयैः ॥ १५ ॥
रतेरस्या असम्पर्कादियं शुद्धेति भण्यते ।
अथ भेदत्रयी हृद्या रतेः प्रीत्यादिरीर्य्यते ॥ १६ ॥
गाढानुकूलतोत्पन्ना ममत्वेन सदाश्रिता ।
कृष्णभक्तेष्वनुग्राह्यसखिपूज्येष्वनुक्रमात् ॥ १७ ॥
त्रिविधेषु त्रयी प्रीतिः सख्यं वत्सलतेत्यसौ ।
अत्र नेत्रादिफुल्लत्वजृम्भणोद्घूर्णनादयः ॥ १८ ॥
केवला सङ्कुला चेति द्विविधेयं रतित्रयी।
रत्यन्तरस्य गन्धेन वर्जिता केवला भवेत् ॥ १९ ॥
व्रजानुगे रसालादौ श्रीदामादौ वयस्यके ।
गुरौ च व्रजनाथादौ क्रमेणैव स्फुरत्यसौ ॥ २० ॥
एषां द्वयोस्त्रयाणां वा संनिपातस्तु सङ्कुला ।
उद्धवादौ च भीमादौ मुखराऽऽदौ क्रमेण सा ॥ २१ ॥
यस्याधिक्यं भवेद्यत्र स तेन व्यपदिश्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वस्माद्भवन्ति ये न्यूनास्तेऽनुग्राह्या हरेर्मताः ॥ २२ ॥
आराध्यत्वात्मिका तेषां रतिः प्रीतिरितारिता ।
तत्रासक्तिकृदन्यत्र प्रीतिसंहारिणी ह्यसौ ॥ २३ ॥
ये स्युस्तुल्या मुकुन्दस्य ते सखायः सतां मताः ।
साम्याद्विश्रम्भरूपैषां रतिः सख्यमिहोच्यते ॥ २४ ॥
परीहासप्रहासादिकारिणीयमयन्त्रणा ।
गुरवो ये हरेरस्य ते पूज्या इति विश्रुताः ॥ २५ ॥
अनुग्रहमयी तेषां रतिर्वात्सल्यमुच्यते ।
इदं लालनभव्याशीश्चिबुकस्पर्शनादिकृत् ॥ २६ ॥
मिथो हरेर्मृगाक्ष्याश्च सम्भोगस्यादिकारणम् ।
मधुरापरपर्य्याया प्रियताऽऽख्योदिता रतिः ॥२७ ॥
अस्यां कटाक्षभ्रूक्षेपप्रियवाणीस्मितादयः ।
यथोत्तरमसौ स्वादविशेषोल्लासमय्यपि ॥ २८ ॥
रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते काऽपि कस्य चित् ।
विभावोत्कर्षजो भावविशेषो योऽनुगृह्यते ॥ २९ ॥
सङ्कुचन्त्या स्वयं रत्या स गौणी रतिरुच्यते ।
हासो विस्मय उत्साहः शोकः क्रोधो भयं तथा ॥ ३० ॥
जुगुप्सा चेत्यसौ भावविशेषः सप्तधोदितः ।
अपि कृष्णविभावत्वमाद्यषट्कस्य सम्भवेत् ॥ ३१ ॥
स्याद्देहादिविभावत्वं सप्तम्यास्तु रतेर्वशात् ।
हासादावत्र भिन्नोऽपि शुद्धसत्त्वविशेषतः ॥ ३२ ॥
परार्थाया रतेर्योगाद्रतिशब्दः प्रयुज्यते ।
हासोत्तरा रतिर्या स्यात्सा हासरतिरुच्यते ॥ ३३ ॥
एवं विस्मयरत्याद्या विज्ञेया रतयश्च षट् ।
कं चित्कालं क्व चिद्भक्ते हासाद्याः स्थायितामभी ॥ ३४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत्या चारुकृता यान्ति तल्लीलाऽऽद्यनुसारतः ।
तस्मादनियताधाराः सप्त सामयिका इमे ॥ ३५ ॥
सहजा अपि लीयन्ते बलिष्ठेन तिरस्कृता ।
काऽप्यव्यभिचरन्ती सा स्वाधारान् स्वस्वरूपतः ॥ ३६ ॥
रतिरात्यन्तिकस्थायी भावो भक्तजनेऽखिले ।
स्युरेतस्या विनाभावाद्भावाः सर्वे निरर्थकाः ॥ ३७ ॥
विपक्षादिषु यान्तोऽपि क्रोधाद्या स्थायितां सदा ।
लभन्ते रतिशून्यत्वान्न भक्तिरसयोग्यताम् ॥ ३८ ॥
अविरुद्धैरपि स्पृष्टा भावाः सञ्चारिणोऽखिलाः ।
निर्वेदाद्या विलीयन्ते नार्हन्ति स्थायितां ततः ॥ ३९ ॥
इत्यतो मतिगर्वादिभावानां घटते न हि ।
स्थायिता कैश्चिदिष्टाऽपि प्रमाणं तत्र तद्विदः ॥ ४० ॥
सप्त हासादयस्त्वेते तैस्तैर्नीताः सुपुष्टताम् ।
भक्तेषु स्थायितां यान्तो रुचिमेभ्यो वितन्वते ॥ ४१ ॥
अष्टानामेव भावानां संस्काराधायिता मता ।
तत्तिरस्कृतसंस्काराः परे न स्थायितोचिताः ॥ ४२ ॥
चेतोविकासो हासः स्याद्वाग्वेषेहादिवैकृतात् ।
स दृग्विकासनासौष्ठकपोलस्पन्दनादिकृत् ॥ ४३ ॥
कृष्णसम्बन्धिचेष्टोत्थः स्वयंसङ्कुचदात्मना ।
रत्याऽनुगृह्यमाणोऽयं हासो हासरतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥
लोकोत्तरार्थवीक्षाऽऽदेर्विस्मयश्चित्तविस्तृतिः ।
अत्र स्युर्नेत्रविस्तारसाधूक्तिपुलकादयः ॥ ४५ ॥
पूर्वोक्तरीत्या निष्पन्नः स विस्मयरतिर्भवेत् ।
स्थेयसी साधुभिः श्लाघ्यफले युद्धादिकर्म्मणि ॥ ४६ ॥
सत्वरा मानसासक्तिरुत्साह इति कीर्त्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कालानवेक्षणं तत्र धैर्यत्यागोद्यमादयः ॥ ४७ ॥
सिद्धः पूर्वोक्तविधिनाऽसावुत्साहरतिर्भवेत् ।
शोकस्त्विष्टवियोगाद्यैश्चित्तक्लेशभरः स्मृतः ॥ ४८ ॥
विलापपातनिश्वासमुखशोषभ्रमादिकृत् ।
पूर्वोक्तविधिनैवायं सिद्धः शोकरतिर्भवेत् ॥ ४९ ॥
प्रातिकूल्यादिभिश्चित्तज्वलनं क्रोध ईर्य्यते ।
पारुष्यभ्रुकुटीनेत्रलौहित्यादिविकारकृत् ॥ ५० ॥
एतं पूर्वोक्तवत्सिद्धं विदुः क्रोधरतिं बुधाः ।
द्विधाऽसौ कृष्णतद्वैरिविभावत्वेन कीर्त्तिता ॥ ५१ ॥
भयं चित्तातिचाञ्चल्यं मन्तुघोरेक्षणादिभिः ।
आत्मगोपनहृच्छोषविद्रवभ्रमणादिकृत् ॥ ५२ ॥
निष्पन्नं पूर्ववदिदं बुधा भयरतिं विदुः ।
एषाऽपि क्रोधरतिवद् द्विविधा कथिता बुधैः ॥ ५३ ॥
जुगुप्सा स्यादहृद्यानुभवाच्चित्तनिमीलनम् ।
तत्र निष्ठीवनं वक्रकूणनं कुत्सनादयः ॥ ५४ ॥
रतेरनुग्रहाज्जाता सा जुगुप्सारतिर्मता ।
रतित्वात्प्रथमैकैव सप्त हासादयस्तथा ॥ ५५ ॥
इत्यष्टौ स्थायिनो यावद्रसावस्थां न संश्रिताः ।
चेत्स्वतन्त्रास्त्रयस्त्रिंशद्भवेयुर्व्यभिचारिणः ॥ ५६ ॥
इहाष्टौ सात्त्विकाश्चैते भावाख्यास्तानसंख्यकाः ।
कृष्णान्वयाद् गुणातीतप्रौढानन्दमया अपि ॥ ५७ ॥
भान्त्यमी त्रिगुणोत्पन्नसुखदुःखमया इव ।
तत्र स्फुरन्ति ह्रीबोधोत्साहाद्याः सात्त्विका इव ॥ ५८ ॥
तथा राजसवद्गर्वहर्षसुप्तिहसादयः ।
विषाददीनतामोहशोकाद्यास्तामसा इव ॥ ५९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रायः सुखमयाः शीता उष्णा दुःखमया इह ।
चित्रेयं परमानन्दसान्द्राऽप्युष्णा रतिर्मता ॥ ६० ॥
शीतैर्भावैर्बलिष्ठैस्तु पुष्टा शीतायते ह्यसौ ।
उष्णैस्तु रतिरत्युष्णा तापयन्तीव भासते ॥ ६१ ॥
विप्रलम्भे ततो दुःखभराभासकृदुच्यते ।
रतिर्द्विधाऽपि कृष्णाद्यैः श्रुतैरवगतैः स्मृतैः ॥ ६२ ॥
तैर्विभावादितां यद्धिस्तद्भक्तेषु रसो भवेत् ।
यथा दध्यादिकं द्रव्यं शर्करामरिचादिभिः ॥ ६३ ॥
संयोजनविशेषेण रसालाख्यो रसो भवेत् ।
तदत्र सर्वथा साक्षात् कृष्णाद्यनुभवाद्भुतः ॥ ६४ ॥
प्रौढानन्दचमत्कारो भक्तैः कोऽप्यनुरस्यते ।
स रत्यादिविभावाद्यैरेकीभावमयोऽपि सन् ॥ ६५ ॥
ज्ञप्ततत्तद्विशेषश्च तत्तदुद्भेदतो भवेत् ।
रतेः कारणभूता ये कृष्णकृष्णप्रियादयः ॥ ६६ ॥
स्तम्भाद्याः कार्य्यभूताश्च निर्वेदाद्याः सहायकाः ।
हित्वा कारणकार्य्यादिशब्दवाच्यत्वमत्र ते ॥ ६७ ॥
रसोद्बोधे विभावादिव्यपदेश्यत्वमाप्नुयुः ।
रतेस्तु तत्तदास्वादविशेषायातियोग्यताम् ॥ ६८ ॥
विभावयन्ति कुर्वन्तीत्युक्ता धीरैर्विभावकाः ।
तां चानुभावयन्त्यन्तस्तन्वन्त्यास्वादनिर्भराम् ॥ ६९ ॥
इत्युक्ता अनुभावास्ते कटाक्षाद्याः ससात्त्विकाः ।
संचारयन्ति वैचित्रीं नयन्ते तां तथाविधाम् ॥ ७० ॥
ये निर्वेदादयो भावास्ते तु सञ्चारिणो मताः ।
एतेषां तु तथाभावे भगवत्काव्यनाट्ययोः ॥ ७१ ॥
सेवामाहुः परं हेतुं के चित्तत्पक्षरागिणः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु तत्र सुदुस्तर्कमाधुर्य्याद्भुतसंपदः ॥ ७२॥
रतेरस्याः प्रभावोऽयं भवेत्कारणमुत्तम् ।
महाशक्तिविलासात्मा भावोऽचिन्त्यस्वरूपभाक् ॥ ७३ ॥
रत्याख्य इत्ययं युक्तो न हि तर्केण बाधितुम् ।
भारताद्युक्तिरेषा हि प्राक्तनैरप्युदाहृता ॥ ७४ ॥
विभावताऽऽदीनानीय कृष्णादीन्मञ्जुला रतिः ।
एतैरेव तथाभूतैः स्वं संवर्द्धयति स्फुटम् ॥ ७५ ॥
यथास्वैरेव सलिलैः परिपूर्य्य बलाहकान् ।
रत्नालयो भवत्येभिर्वृष्टैस्तैरेव वारिधिः ॥ ७६ ॥
नवे रत्यङ्कुरे जाते हरिभक्तस्य कस्य चित् ।
विभावत्वादिहेतुत्वं किञ्चित्तत्काव्यनाट्ययोः ॥ ७७ ॥
हरेरीषच्छ्रुतिविधौ रसास्वादः सतां भवेत् ।
रतेरेव प्रभावोऽयं हेतुस्तेषां तथाकृतौ ॥ ७८ ॥
माधुर्य्याद्याश्रयत्वेन कृष्णादींस्तनुते रतिः ।
तथाऽनुभूयमानास्ते विस्तीर्णां कुर्वते रतिम् ॥ ७९ ॥
अतस्तस्य विभादिचतुष्कस्य रतेरपि ।
अत्र साहायकं व्यक्तं मिथोऽजस्रमवेक्ष्यते ॥ ८० ॥
किन्त्वेतस्याः प्रभावोऽपि वैरूप्ये सति कुञ्चति ।
वैरूप्यं तु विभावादेरनौचित्यमुदीर्य्यते ॥ ८१ ॥
अलौकिक्या प्रकृत्येय सुदुरूहा रसस्थितिः ।
यत्र साधारणतया भावाः साधु स्फुरन्त्यमी ॥ ८२ ॥
एषां स्वपरसम्बन्धनियमानिर्णयो हि यः ।
साधारण्यं तदेवोक्तं भावानां पूर्वसूरिभिः ॥ ८३ ॥
शक्तिरस्ति विभावादेः काऽपि साधारणीकृतौ ।
प्रमाता तदभेदेन स्वं यया प्रतिपद्यते ॥ ८४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुःखादयः स्फुरन्तोऽपि जातु स्वीयतया हृदि ।
प्रौढानन्दचमत्कारचर्वणामेव तन्वते ॥ ८५ ॥
पराश्रयतयाऽप्येते जातु भान्तः सुखादयः ।
हृदये परमानन्दसंदोहमुपाचिन्वते ॥ ८६ ॥
सद्भावश्चेद्विभावादेः किंचिन्मात्रस्य जायते ।
सद्यश्चतुष्टयाक्षेपात्पूर्णतैवोपपद्यते ॥ ८७ ॥
रतिः स्थिताऽनुकार्य्येषु लौकिकत्वादिहेतुभिः ।
रसः स्यान्नेति नाट्यज्ञा यदाहुर्युक्तमेव तत् ॥ ८८ ॥
अलौकिकी त्विय कृष्णरतिः सर्वाद्भुताद्भुता ।
योगे रसविशेषत्वं गच्छन्त्येव हरिप्रिये ॥ ८९ ॥
वियोगे त्वद्भुतानन्दविवर्त्तत्वं दधत्यपि ।
तनोत्येषा प्रगाढार्त्तिभराभासत्वमूर्जिता ॥ ९० ॥
तत्रापि वल्लवाधीशनन्दनालम्बना रतिः ।
सान्द्रानन्दचमत्कारपरमावधिरिष्यते ॥ ९१ ॥
यत्सुखौघलवागस्त्यः पिबत्येव स्वतेजसा ।
रमेशमाधुरीसाक्षात्कारानन्दाब्धिमप्यलम् ॥ ९२ ॥
परमानन्दतादात्म्याद्रत्यादेरस्य वस्तुतः ।
रसस्य स्वप्रकाशत्वमखण्डत्वं च सिद्ध्यति ॥ ९३ ॥
पूर्वमुक्ताद् द्विधा भेदान्मुख्यगौणतया रतेः ।
भवेद्भक्तिरसोऽप्येष मुख्यगौणतया द्विधा ॥ ९४ ॥
पञ्चधाऽपि रतेरैक्यान्मुख्यस्त्वेक इहोदितः ।
सप्तधाऽत्र तथा गौण इति भक्तिरसोऽष्टधा ॥ ९५ ॥
मुख्यस्तु पञ्चधा शान्तः प्रीतिः प्रेयांश्च वत्सलः ।
मधुरश्चेत्यमी ज्ञेया यथापूर्वमनुत्तमाः ॥ ९६ ॥
हास्योऽद्भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भयानकः सबीभत्स इति गौणश्च सप्तधा ॥ ९७ ॥
एवं भक्तिरसो भेदाद् द्वयोर्द्वादशधोच्यते ।
वस्तुतस्तु पुराणादौ पञ्चधैव विलोक्यते ॥ ९८ ॥
श्वेतश्चित्रोऽरुणः शोण श्यामः पाण्डरपिङ्गलौ ।
गौरो धूम्रस्तथा रक्तः कालो नीलः क्रमादमी ॥ ९९ ॥
कपिलो माधवोपेन्द्रौ नृसिंहो नन्दनन्दनः ।
बलः कूर्म्मस्तथा कल्की राघवो भार्गवः किरिः ॥ १०० ॥
बुद्ध इत्येषु कथिताः क्रमाद् द्वादश देवताः ।
पूर्त्तिर्विकाशविस्ताराविक्षेपक्षोभतस्तथा ॥ १०१ ॥
सर्वभक्तिरसास्वादः पञ्चधा परिकीर्त्तितः ।
पूर्त्तिः शान्ते विकाशस्तु प्रीतादिष्वपि पञ्चसु ॥ १०२ ॥
वीरेऽद्भुते च विस्तारो विक्षेपः करुणोग्रयोः ।
भयानकेऽथ बीभत्से क्षोभो धीरैरुदाहृतः ॥ १०३ ॥
अखण्डमुखरूपत्वेऽप्येषामस्ति क्व चित् क्व चित ।
रसे सुगहनास्वादविशेषः कोऽप्यनुत्तमः ॥ १०४ ॥
प्रतीयमाना अप्यज्ञैर्ग्राम्यैः सपदि दुःखवत् ।
करुणाद्या रसाः प्राज्ञैः प्रौढानन्दमया मताः ॥ १०५ ॥
अलौकिकविभावत्वं नीतेभ्यो रतिलीलया ।
सदुक्त्या च सुखं तेभ्यः स्यात्सुव्यक्तमिति स्थितिः ॥ १०६ ॥
करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम् ।
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम् ॥ १०७ ॥
सर्वत्र करुणाख्यस्य रसस्यैवोपपादनात् ।
भवेद्रामायणादीनामन्यथा दुःखहेतुता ॥ १०८ ॥
तथात्वे रामपादाब्जप्रेमकल्लोलवारिधिः ।
प्रीत्या रामायणं नित्यं हनुमान् शृणुयात्कथम् ॥ १०९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संचारी स्यात्समोना वा कृष्णरत्याः सुहृद्रतिः ।
अधिकां पुष्यमाणा चेद्भावोल्लास इतीर्यते ॥ ११० ॥
फल्गुवैराग्यनिर्दग्धाः शुष्कज्ञानाश्च हैतुकाः ।
मीमांसका विशेषेण भक्त्यास्वादबहिर्मुखाः ॥ १११ ॥
इत्येष भक्तिरसिकश्चोरादिव महानिधिः ।
जरन्मीमांसकाद्रक्ष्यः कृष्णभक्तिरसः सदा ॥ ११२ ॥
सर्वथैव दुरूहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः ।
तत्पादाम्बुजसर्वस्वभक्तैरेवात्र रस्यते ११३ ॥
व्यतीत्य भावनावर्त्म यश्चमत्कृतिभारभृः ।
हृदि सत्त्वोज्ज्वले बाढं स्वदते स रसो मतः ॥ ११४ ॥
भावनायाः पदं यस्तु बुधेनानन्यबुद्धिना ।
भाव्यते गाढसंस्कारश्चित्ते भावः स कथ्यते ॥ ११५ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ दक्षिविभागे भक्तिरससामान्य-
निरूपणे स्थायिभावलहरी ॥ ५ ॥

गोपालरूपशोभां दधदपि रघुनाथभावविस्तारी ।
तुष्यतु सनातनात्मा दक्षिणभागे सुधाऽम्बुनिधेः ॥ १ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ भक्तिरससामान्यानिरूपणनामा
दक्षिणो विभागः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पश्चिमविभागे

मुख्यभक्तिरस निरूपणे शान्तभक्ति

प्रथमलहरी—

धृतमुग्धरूपभारो भागवतार्पितपृथुप्रेमा ।
स मयि सनातनमूर्त्तिस्तनोतु पुरुषोत्तमस्तुष्टिम् ॥ १ ॥
रसामृताब्धेर्भागेऽत्र तृतीये पश्चिमाभिधे ।
मुख्यो भक्तिरसः पञ्चविधः शान्तादिरीर्य्यते ॥ २ ॥
अतोऽत्र पाञ्चविध्येन लहर्य्यः पञ्च कीर्तिताः ।
अथामी पञ्च लक्ष्यन्ते रसाः शान्तादयः क्रमात् ॥ ३ ॥
वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः शमिनां स्वाद्यतां गतः ।
स्थायी शान्तिरतिर्धीरैः शान्तभक्तिरसः स्मृतः ॥ ४ ॥
प्रायः स्वसुखजातीयं सुखं स्यादत्र योगिनाम् ।
किन्त्वात्मसौख्यमघनङ्घनं त्वीशमयं सुखम् ॥ ५ ॥
तत्रापीशस्वरूपानुभावस्यैवोरुहेतुता ।
दासादिवन्मनोज्ञत्वलीलाऽऽदेर्न तथा मता ॥ ६ ॥
चतुर्भुजश्च शान्ताश्च तस्मिन्नालम्बना मताः ।
सच्चिदानन्दसान्द्राङ्ग आत्मारामाशिखामणिः ॥ ७ ॥
परमात्मा परं ब्रह्म समो दान्तः शुचिर्वशी ।
सदा स्वरूपसम्प्राप्तो हतारिगतिदायकः ॥ ८ ॥
विभुरित्यादिगुणवानस्मिन्नालम्बनो हरिः ।
शान्ताः स्युः कृष्णतत्प्रेष्ठकारुण्येन रतिं गताः ॥ ९ ॥
आत्मारामास्तदीयाध्ववद्धश्रद्धाश्च तापसाः ।
आत्मारामास्तु सनकसनन्दनमुखा मताः ॥ १० ॥
प्राधान्यात्सनकादीनां रूपं भक्तिश्च कथ्यते ।
मुक्तिर्भक्त्यैव निर्विन्नेत्याद्ययुक्तविरक्तताः ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुज्झितमुमुक्षा ये भजन्ते ते तु तापसाः ।
भक्तात्मारामकरुणाप्रपञ्चेनैव तापसाः ॥ १२ ॥
शान्त्याख्यभावचन्द्रस्य हृदाकाशे कलां श्रिताः ।
श्रुतिर्महोपनिषदां विविक्तस्थानसेवनम् ॥ १३ ॥
अन्तर्वृत्तिविशेषोऽस्य स्फूर्त्तिस्तत्त्वविवेचनम् ।
विद्याशक्तिप्रधानत्वं विश्वरूपप्रदर्शनम् ॥ १४ ॥
ज्ञानिभक्तेन संसर्गो ब्रह्मसत्रादयस्तथा ।
एष्वसाधारणाः प्रोक्ता बुधैरुद्दीपना अमी ॥ १५ ॥
पादाब्जतुलसीगन्धः शङ्खनादो मुरद्विषः ।
पुण्यशैलः शुभारण्यं सिद्धक्षेत्रं स्वरापगा ॥ १६ ॥
विषयादिक्षयिष्णुत्वं कालस्याखिलहारिता ।
इत्याद्युद्दीपनाः साधारणास्त्वेषां किलाश्रितैः ॥ १७ ॥
नासाग्रन्यस्तनेत्रत्वमवधूताविचेष्टितम् ।
युगमात्रेक्षितगतिर्ज्ञानमुद्राप्रदर्शनम् ॥ १८ ॥
हरेर्द्विष्यपि न द्वेषो नातिभक्तिः प्रियेष्वपि ।
सिद्धतायास्तथा जीवन्मुक्तेश्च बहुमानिता ॥ १९ ॥
नैरपेक्ष्यं निर्ममता निरहंकारिता तथा ।
मौनमित्यादयः शीताः स्युरसाधारणाः क्रियाः ॥ २० ॥
जृम्भाऽङ्गमोटनं भक्तेरुपदेशो हरेर्नतिः ।
स्तवादयश्च दासाद्यैः शीताः साधारणाः क्रियाः ॥२१॥
रोमाञ्चस्वेदकम्पाद्याः सात्त्विकाः प्रलयं विना ।
एषां निरभिमानानां शरीरादिषु योगिनाम् ॥ २२ ॥
सात्त्विकास्तु ज्वलन्त्येव न तु दीप्ता भवन्त्यमी ।
सञ्चारिणोऽत्र निर्वेदो धृतिर्हर्षो मतिः स्मृतिः ॥ २३ ॥
विषादोत्सुकताऽऽवेगवितर्काद्याः प्रकीर्त्तिताः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र शान्तिरतिः स्थायी समा सान्द्रा तु सा द्विधा ॥ २४ ॥
शान्तो द्विधैष पारोक्ष्यसाक्षात्कारविभेदतः ।
भवेत्कदा चित्कुत्रापि नन्दसूनोः कृपाभरः ॥ २५ ॥
प्रथमं ज्ञाननिष्ठोऽपि सोऽत्रैव रतिमुद्वहेत् ।
तत्कारुण्यश्लथीभूतज्ञानसंस्कारसन्ततिः ॥ २६ ॥
एष भक्तिरसानन्दनिपुणः स्याद्यथा शुकः ।
शमस्य निर्विकारत्वान्नाट्यज्ञैर्नैष मन्यते ॥ २७ ॥
शान्त्याख्याया रतेत्र स्वीकारान्न विरुध्यते ।
शमो मन्निष्ठता बुद्धेरिति श्रीभगवद्वचः ॥ २८ ॥
तन्निष्ठा दुर्घटा बुद्धेरेतां शान्तिरतिं विना ।
नास्ति यत्र सुखं दुःखं न द्वेषो न च मत्सरः ॥ २९ ॥
समः सर्वेषु भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः ।
सर्वथैवमहङ्काररहितत्वं व्रजन्ति चेत् ॥ ३० ॥
अत्रान्तर्भावमर्हन्ति धर्मवीरादयस्तदा ।
धृतिस्थायिनमेके तु निर्वेदस्थायिनं परे ॥ ३१ ॥
शान्तमेव रसम्पूर्वं प्रोचुरेकमनेकधा ।
निर्वेदो विषये स्थायी तत्त्वज्ञानोद्भवः स चेत् ॥ ३२ ॥
इष्टानिष्टविभागाप्तिकृतस्तु व्यभिचार्य्यसौ ।

इति श्रीभक्तिरसामृतसिन्धौ पश्चिमविभागे मुख्यभक्तिरस-
पञ्चकनिरूपणे शान्तभक्तिरसलहरी ॥ १ ॥

मुख्य भक्तिरस निरूपण प्रीत भक्ति

द्वितीयलहरी—

श्रीधरस्वामिभिः स्पष्टमयमेव रसोत्तमः ।
रङ्गप्रसङ्गे सप्रेमभक्तिकाख्यः प्रकीर्त्तितः ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रतिस्थायितया नामकौमुदीकृद्भिरप्यसौ ।
शान्तत्वेनायमेवाद्धा सुदेवाद्यैश्च वर्णितः ॥ २ ॥
आत्मोचितैर्विभावाद्यैः प्रीतिरास्वादनीयताम् ।
नीता चेतसि भक्तानां प्रीतभक्तिरसो मतः ॥ ३ ॥
अनुग्राह्यस्य दासत्वाल्लाल्यत्वादप्यं द्विधा ।
भिद्यते सम्भ्रमप्रीतो गौरवप्रीत इत्यपि ॥ ४ ॥
दासाभिमानिनां कृष्णे स्यात् प्रीतिः सम्भ्रमोत्तरा ।
पूर्ववत पुष्यमाणोऽयं सम्भ्रमप्रीत उच्यते ॥ ५ ॥
हरिश्च तस्य दासाश्च ज्ञेया आलम्बना इह ।
आलम्बनोऽस्मिन् द्विभुजः कृष्णो गोकुलवासिषु ॥ ६ ॥
अन्यत्र द्विभुजः क्वापि कुत्राप्येष चतुर्भुजः ।
ब्रह्माण्डकोटिधामैकरोमकूपः कृपाऽम्बुधिः ॥ ७ ॥
अविचिन्त्यमहाशक्तिः सर्वसिद्धिनिषेवितः ।
अवतारावलीबीजं सदात्मारामहृद्गुणः ॥ ८ ॥
ईश्वरः परमाराध्यः सर्वज्ञः सुदृढव्रतः ।
समृद्धिमान क्षमाशीलः शरणागतपालकः ॥ ९ ॥
दक्षिणः सत्यवचनो दक्षः सर्वशुभङ्करः ।
प्रतापी धार्मिकः शास्त्रचक्षुर्भक्तसुहृत्तमः ॥ १० ॥
वदान्यस्तेजसा युक्तः कृतज्ञः कीर्तिसंश्रयः ।
वरीयान् बलवान् प्रेमवश्य इत्यादिभिर्गुणैः ॥ ११ ॥
युतश्चतुर्विधेष्वेष दासेष्वालम्बनो हरिः ।
दासास्तु प्रश्रितास्तस्य निदेशवशवर्तिनः ॥ १२ ॥
विश्वस्ताः प्रभुताज्ञानविनम्रितधियश्च ते ।
चतुर्धाऽमी अधिकृताश्रितपारिषदानुगाः ॥ १३ ॥
ब्रह्मशङ्करशक्राद्याः प्रोक्ता अधिकृता बुधैः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपं प्रसिद्धमेवैषां तेन भक्तिरुदीर्य्यते ॥ १४ ॥
ते शरण्या ज्ञानिचराः सेवानिष्ठास्त्रिधा श्रिताः ।
शरण्या कालियजरासन्धबद्धनृपादयः ॥ १५ ॥
ये मुमुक्षां परित्यज्य हरिमेव समाश्रिताः ।
शौनकप्रमुखास्ते तु प्रोक्ता ज्ञानिचरा बुधैः ॥ १६ ॥
मूलतो भजनासक्ताः सेवानिष्ठा इतीरिताः ।
चन्द्रध्वजो हरिहयो बहुलाश्वस्तथा नृपः ॥ १७ ॥
इक्ष्वाकुः श्रुतदेवश्च पुण्डरीकादयश्च ते ।
उद्धवो दारुको जैत्रः श्रुतदेवश्च शत्रुजित् ॥ १८ ॥
नन्दोपनन्दभद्राद्याः पार्षदा यदुपत्तने ।
नियुक्ताः सन्त्यमी मन्त्रसारथ्यादिषु कर्मसु ॥ १९ ॥
तथाऽपि क्वाप्यवसरे परिचर्य्यां च कुर्वते ।
कौरवेषु तथा भीष्मपरीक्षिद्विदुरादयः ॥ २० ॥
एतेषां प्रवरः श्रीमानुद्धवः प्रेमविह्वलः ।
सर्वदा परिचर्य्यासु प्रभोरासक्तचेतसः ॥ २१ ॥
पुरस्थाश्च व्रजस्थाश्चेत्युदिता अनुगा द्विधा ।
सुचन्द्रो मण्डनः स्तम्बः सुतम्बाद्याः पुरानुगाः ॥ २२ ॥
एषां पार्षदवत्प्रायो रूपालंकरणादयः ।
रक्तकः पत्रकः पत्री मधुकण्ठो मनुव्रतः ॥ २३ ॥
रसालः सुविलासश्च प्रेमकन्दो मरन्दकः ।
आनन्दश्चन्द्रहासश्च प्रमोदो बकुलस्तथा ॥ २४ ॥
रसदः शारदाद्याश्च व्रजस्था अनुगा मताः ।
व्रजानुगेषु सर्वेषु वरीयान् रक्तको मतः ॥ २५ ॥
धुर्य्यो धीरश्च वीरश्च त्रिधा पारिषदादिकः ।
कृष्णेऽस्य प्रेयसीवर्गे दासादौ च यथायथम् ॥ २६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यः प्रीतिं तनुते रक्तः स धुर्य्य इति कीर्त्यते ।
आश्रित्य प्रेयसीमस्य नातिसेवापरोऽपि यः ॥ २७ ॥
तस्य प्रसादपत्रं स्यान्मुख्यं धीरः स उच्यते ।
कृपां तस्य समाश्रित्य प्रौढां नान्यमपेक्षते ॥ २८ ॥
अतुलां यो वहन् कृष्णे प्रीतिं वीरः स उच्यते ।
एतेषु तस्य दासेषु त्रिविधेष्वाश्रितादिषु ॥ २९ ॥
नित्यसिद्धाश्च सिद्धाश्च साधका अपि कीर्त्तिताः ।
अनुग्रहस्य संप्राप्तिस्तस्याङ्घ्रिरजसां तथा ॥ ३० ॥
मुक्तावशिष्टभक्तादेरपि तद्भक्तसङ्गतिः ।
इत्यादयो विभावाः स्युरेष्वसाधारणा मताः ॥ ३१ ॥
मुरलीशृङ्गयोः स्वानः स्मितपूर्वावलोकनम् ।
गुणोत्कर्षश्रुतिः पद्मपदाङ्कनवनीरदाः ॥ ३२ ॥
तदङ्गसौरभाद्यास्तु सर्वैः साधारणा मताः ।
सर्वतः स्वनियोगानामाधिक्येन परिग्रहः ॥ ३३ ॥
ईर्ष्यालवेन चास्पृष्टा मैत्री तत्प्रणते जने ।
तन्निष्ठताऽऽद्याः शीताः स्युरेष्वसाधारणाः क्रियाः ॥ ३४ ॥
उद्भास्वराः पुरोक्ता ये तथाऽस्य सुहृदादरः ।
विरागाद्याश्च ये शीताः प्रोक्ताः साधारणास्तु ते ॥ ३५ ॥
स्तम्भाद्याः सात्त्विकाः सर्वे प्रीतादित्रितये मताः ।
हर्षो गर्वो धृतिश्चात्र निर्वेदोऽथ विषण्णता ॥ ३६ ॥
दैन्यं चिन्ता स्मृतिः शङ्का मतिरौत्सुक्यचापले ।
वितर्कावेगहीजाड्यमोहोन्मादावहित्थिकाः ॥ ३७ ॥
बोधः स्वप्नः क्लमो व्याधिर्मृतिश्च व्याभिचारिणः
इतरेषां मदादीनां नातिपोषकता भवेत् ॥ ३८ ॥
योगे त्रयः स्युर्धृत्याद्या अयोगे तु क्लमादयः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उभयत्र परे शेषा निर्वेदाद्या सतां मताः ॥ ३९ ॥
सम्भ्रमः प्रभुताज्ञानात्कम्पश्चेतसि सादरः ।
अनैनैक्यं गता प्रीतिः संभ्रमप्रीतिरुच्यते ॥ ४० ॥
एषा रसेऽत्र कथिता स्थायिभावतया बुधैः ।
आश्रितादेः पुरैवोक्तः प्रकारो रतिजन्मनि ॥ ४१ ॥
तत्र पारिषदादेस्तु हेतुः संस्कार एव हि ।
संस्कारोद्बोधकास्तस्य दर्शनश्रवणादयः ॥ ४२ ॥
एषां तु सम्भ्रमप्रीतिः प्राप्नुवत्युत्तरोत्तराम् ।
वृद्धिं प्रेमा ततः स्नेहस्ततो राग इति त्रिधा ॥ ४३ ॥
ह्रासशङ्काच्युता बद्धमूला प्रेमेयमुच्यते ।
अस्यानुभावाः कथितास्तत्र व्यसनिताऽऽदयः ॥ ४४ ॥
सान्द्रश्चित्तद्रवं कुर्वन् प्रेमा स्नेह इतीर्य्यते ।
क्षणिकस्यापि नेह स्याद्विश्लेषस्य सहिष्णुता ॥ ४५ ॥
स्नेहः स रागो येन स्यात् सुखं दुःखमपि स्फुटम् ।
तत्सम्बन्धलवेऽप्यत्र प्रीतिः प्राणव्ययैरपि ॥ ४६ ॥
प्राय आद्यद्वये प्रेमा स्नेहः पारिषदेष्वसौ ।
परीक्षिति भवेद्रागो दारुके च तथोद्धवे ॥ ४७ ॥
व्रजानुगेष्वनेकेषु रक्तकप्रमुखेषु च ।
अस्मिन्नभ्युदिते भावः प्रायः स्यात्सख्यलेशभाक् ॥ ४८ ॥
अयोगयोगावेतस्य प्रभेदौ कथितावुभौ ।
सङ्गाभावो हरेर्धीरैरयोग इति कथ्यते ॥ ४९ ॥
अयोगे तन्मनस्कत्वं तद्गुणाद्यनुसंधयः ।
तत्प्राप्त्युपायचिन्ताऽऽद्याः सर्वेषां कथिता क्रियाः ॥ ५० ॥
उत्कण्ठितं वियोगश्चेत्ययोगोऽपि द्विधोच्यते ।
अदृष्टपूर्वस्य हरेर्दिदृक्षोत्कण्ठितं मतम् ॥ ५१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्रायोगप्रसक्तानां सर्वेषामपि सम्भवे ।
औत्सुक्यदैन्यनिर्वेदचिन्तानां चापलस्य च ॥ ५२ ॥
जडतोन्मादमोहानामपि स्यादतिरिक्तता ।
वियोगो लब्धसङ्गेन विच्छेदो दनुजद्विषा ॥ ५३ ॥
अङ्गेषु तापः कृशता जागर्य्याऽऽलम्बशून्यता ।
अधृतिर्जडता व्याधिरुन्मादो मूर्च्छितं मृतिः ॥ ५४ ॥
वियोगसम्भ्रमप्रीतेर्दशावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ।
अनवस्थितिराख्याता चित्तस्यालम्बशून्यता ॥ ५५ ॥
अरागिता तु सर्वस्मिन्नधृतिः कथिता बुधैः ।
अन्येऽष्टौ प्रकटार्थत्वात्तापाद्या न हि लक्षिताः ॥ ५६ ॥
अशिवत्वान्न घटते भक्ते कुत्राप्यसौ मृतिः ।
क्षोभकत्वाद्वियोगस्य जातप्रायेति कथ्यते ॥ ५७ ॥
कृष्णेन सङ्गमो यस्तु स योग इति कीर्त्यते ।
योगोऽपि कथितः सिद्धिस्तुष्टिः स्थितिरिति त्रिधा ॥ ५८॥
उत्कण्ठिते हरैः प्राप्तिः सिद्धिरित्यभिधीयते ।
जाते वियोगे कंसारेः सम्प्राप्तिस्तुष्टिरुच्यते ॥ ५९ ॥
सहवासो मुकुन्देन स्थितिर्निगदिता बुधैः ।
निजावसरशुश्रूषाविधाने सावधानता ॥ ६० ॥
पुरस्तस्यानिवेशाद्या योगेऽमीषां क्रिया मताः ।
के चिदस्या रतेः कृष्णभक्त्यास्वादबहिर्मुखाः ॥ ६१ ॥
भावत्वमेव निश्चित्य न रसावस्थतां जगुः ।
इति तावदसाधीयो यत्पुराणेषु केषु चित् ॥ ६२ ॥
श्रीमद्भागवते चैष प्रकटो दृश्यते रसः।
एषाऽत्र भक्तभावानां प्रायिकी प्रक्रियोदिता ॥ ६३ ॥
किन्तु कालादिवैशिष्ट्यात्क्व चित्स्यात् सीमलङ्घनम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लाल्याभिमानिनां कृष्णे स्यात् प्रीतिर्गौरवोत्तरा ॥ ६४ ॥
सा विभावादिभिः पुष्टा गौरवप्रीत उच्यते ।
हरिश्च तस्य लाल्याश्च भवन्त्यालम्बना इह ॥ ६५ ॥
महागुरुर्महाकीर्त्तिर्महाबुद्धिर्महाबलः ।
रक्षी लालक इत्याद्यैर्गुणैरालम्बनो हरिः ॥ ६६ ॥
लाल्याः किल कनिष्ठत्वपुत्रत्वाद्यभिमानिनः ।
कनिष्ठाः सारणगदसुभद्राप्रमुखाः स्मृताः ॥ ६७ ॥
प्रद्युम्नचारुदेष्णाद्याः साम्बाद्याश्च कुमारकाः ।
रुक्मिणीनन्दनस्तेषु लाल्येषु प्रवरो मतः ॥ ६८ ॥
उभयेषां सदाऽऽराध्यधियैव भजतामपि ।
सेवकानामिहैश्वर्य्यज्ञानस्यैव प्रधानता ॥ ६९ ॥
लाल्यानां तु स्वसम्बन्धस्फूर्त्तिरेव समन्ततः ।
व्रजस्थानां परश्वैर्य्यज्ञानशून्यधियामपि ॥ ७० ॥
अस्त्येव बल्लवाधीशपुत्रत्वैश्वर्य्यबन्दनम् ।
उद्दीपनास्तु वात्सल्यस्मितप्रेक्षाऽऽदयो हरेः ॥ ७१ ॥
अनुभावास्तु तस्याग्रे नीचासननिवेशनम् ।
गुरोर्वर्त्मानुसारित्वं धुरस्तस्य परिग्रहः ॥ ७२ ॥
स्वैराचारविमोक्षाद्याः शीता लाल्येषु कीर्त्तिताः ।
दासैः साधारणाश्चान्ये प्रोच्यन्तेऽमीषु के चन ॥ ७३ ॥
प्रणामो मौनबाहुल्यं संकोचः प्रश्रयाढ्यता ।
निजप्राणव्ययेनापि तदाज्ञापरिपालनम् ॥ ७४ ॥
अधोवदनता स्थैर्य्यं कासहासादिवर्जनम् ।
तदीयातिरहःकेलिवार्त्ताव्युपरमादयः ॥ ७५ ॥
अनन्तरोक्ताः सर्वेऽत्र भवन्ति व्यभिचारिणः ।
देहसम्बन्धितामात्राद् गुरुधीरत्र गौरवम ॥ ७६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तन्मयी लालके प्रीतिर्गौरवप्रीतिरुच्यते ।
स्थायी भावोऽत्र सा चैषामामूलात् स्वयमुच्छ्रिता ॥ ७७ ॥
कं चिद्विशेषमापन्ना प्रेमेति स्नेह इत्यपि ।
राग इत्युच्यते चात्र गौरवप्रीतिरेव सा ॥ ७८ ॥
त्रिष्वेवायोगयोगाद्या भेदाः पूर्ववदीरिताः ।
उत्कण्ठितवियोगादौ यद्यद्विस्तारितं न हि ॥ ७९ ॥
संभ्रमप्रीतवज्ज्ञेयं तत्तदेवाखिलं बुधैः ।

इति रसामृतसिन्धौ पश्चिमविभागे मुख्यभक्तिरसपञ्चकनिरूपणे प्रीतभक्तिरसलहरी ॥ २ ॥

मुख्यभक्तिरस निरूपणे प्रेयो भक्ति

तृतीयलहरी—

स्थायी भावो विभावाद्यैः सख्यमात्मोचितैरिह ।
नीतश्चित्ते सतां पुष्टिं रसः प्रेयानुदीर्य्यते ॥ १ ॥
हरिश्च तद्वयस्याश्च तस्मिन्नालम्बना मताः ।
द्विभुजत्वादिभागत्र प्राग्वदालम्बनो हरिः ॥ २ ॥
सुवेषः सर्वसल्लक्ष्मलक्षितो बलिनां वरः ।
विविधाद्भुतभाषाविद्भावदूकः सुपण्डितः ॥ ३ ॥
विपुलप्रतिभो दक्षः करुणो वीरशेखरः ।
विदग्धो बुद्धिमान् क्षन्ता रक्तलोकः समृद्धिमान् ॥ ४ ॥
सुखी वरीयानित्याद्या गुणास्तस्येह कीर्त्तिताः ।
रूपवेषगुणाद्यैस्तु समाः सम्यगयन्त्रिताः ॥ ५ ॥
विस्रम्भसम्भृतात्मानो वयस्यास्तस्य कीर्त्तिताः ।
ते पुरव्रजसम्बन्धाद् द्विविधाः प्राय ईरिताः ॥ ६ ॥
अर्जुनो भीमसेनश्च दुहिता द्रुपदस्य च ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीदाममूसुराद्याश्च सखायः पुरसंश्रयाः ॥ ७ ॥
श्रेष्ठः पुरवयस्येषु भगवान् वानरध्वजः ।
क्षणादर्शनतो दीनाः सदा सहविहारिणः ॥ ८ ॥
तदेकजीविताः प्रोक्ता वयस्या व्रजवासिनः ।
अतः सर्ववयस्येषु प्रधानत्वं भजन्त्यमी ॥ ९ ॥
सुहृदश्च सखायश्च तथा प्रियसखाः परे ।
प्रियनर्मवयस्याश्चेत्युक्ता गोष्ठे चतुर्विधाः ॥ १० ॥
वात्सल्यगन्धिसख्यास्तु किञ्चित्ते वयसाऽधिकाः ।
सायुधास्तस्य दुष्टेभ्यः सदा रक्षापरायणाः ॥ ११ ॥
सुभद्रमण्डलीभद्रभद्रवर्द्धनगोभटाः ।
यक्षेन्द्रभटभद्राङ्गवीरभद्रमहागुणाः ॥ १२ ॥
विजयो बलभद्राद्याः सुहृदस्तस्य कीर्त्तिताः ।
सुहृत्सुमण्डलीभद्रबलभद्रौ किलोत्तमौ ॥ १३ ॥
कनिष्ठकल्पाः सख्येन सम्बद्धाः प्रीतिगन्धिना ।
विशालवृषभौजस्विदेवप्रस्थवरूथपाः ॥ १४ ॥
मरन्दकुसुमापीडमणिबन्धकरन्धमाः ।
इत्यादयः सखायोऽस्य सेवासौख्यैकरागिणः ॥ १५ ॥
सर्वेषु सखिषु श्रेष्ठो देवप्रस्थोऽयमीरितः ।
वयस्तुल्याः प्रियसखाः सख्यं केवलमाश्रिताः ॥ १६ ॥
श्रीदामा वसुदामा च दामा च वसुदामकः ।
किङ्किणिस्तोककृष्णांशुभद्रसेनविलासिनः ॥ १७ ॥
पुण्डरीकविटङ्काक्षकलविङ्कादयोऽप्यमी ।
रमयन्ति प्रियसखाः केलिभिर्विविधैः सदा ॥ १८ ॥
नियुद्धदण्डयुद्धादिकौतुकैरपि केशवम् ।
एषु प्रियवयस्येषु श्रीदामा प्रवरो मतः ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रियनर्मवयस्यास्तु पूर्वतोऽप्यभितो वराः ।
आत्यन्तिकरहस्येषु युक्ता भावविशेषिणः ॥ २० ॥
सुबलार्जुनगन्धर्वास्ते वसन्तोज्ज्वलादयः ।
प्रियनर्मवयस्येषु प्रवरौ सुबलोज्ज्वलौ ॥ २१ ॥
उज्ज्वलोऽयं विशेषेण सदा नर्मोक्तिलालसः ।
एतेषु केऽपि शास्त्रेषु केऽपि लोकेषु विश्रुताः ॥ २२ ॥
नित्यप्रियाः सुरचराः साधकाश्चेति ते त्रिधा ।
के चिदेषु स्थिरा जात्या मन्त्रिवत्तमुपासते ॥ २३ ॥
तं हासयन्ति चपलाः के चिद्धहासिकोपमाः ।
के चिदार्जवसारेण सरलाः शीलयन्ति तम् ॥ २४ ॥
वामा वक्रिमचक्रेण के चिद्विस्मायन्त्यमुम् ।
के चित्प्रगल्भाः कुर्वन्ति वितण्डाममुना समम् ॥ २५ ॥
सौम्याः सूनृतया वाचा धन्या धिन्वन्ति तं परे ।
एवं विविधया सर्वे प्रकृत्या मधुरा अमी ॥ २६ ॥
पवित्रमैत्रीवैचित्रीचारुतामुपचिन्वते ।
उद्दीपना वयोरूपशृङ्गवेणुदरा हरेः ॥ २७ ॥
विनोदनर्मविक्रान्तिगुणाः प्रेष्ठजनास्तथा ।
राजदेवावतारादिचेष्टाऽनुकरणादयः ।
वयः कौमारपौगण्डे कैशोरं चेह सम्मतम् ।
गोष्ठे कौमारपौगण्डे कैशोरं पुरगोष्ठयोः ॥ २९ ॥
कौमारं वत्सले वाच्यं ततः संक्षिप्य लिख्यते ।
आद्यं मध्यं तथा शेषं पौगण्डं च त्रिधा भवेत् ॥ ३० ॥
अधरादेः सुलौहित्यं जठरस्य च तानवम् ।
कम्बुग्रीवोद्गमाद्यं च पौगण्डे प्रथमे सति ॥ ३१ ॥
पुष्पमण्डनवैचित्री चित्राणि गिरिधातुभिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पीतपट्टदुकूलाद्यमिह प्रोक्तम् प्रसाधनम् ॥ ३२ ॥
सर्वाटवीप्रचारेण नैचिकीचयचारणम् ।
नियुद्धकेलिनृत्यादिशिक्षाऽऽरम्भोऽत्र चेष्टितम् ॥ ३३ ॥
नासा सुशिखरा तुङ्गा कपोलौ मण्डलाकृती ।
पार्श्वाद्यङ्गं सुवलितं पौगण्डे सति मध्यमे ॥ ३४ ॥
उष्णीषं पट्टसूत्रोत्थपाशेनात्र तडित्त्विषा ।
यष्टिः श्यामा त्रिहस्तोच्चा स्वर्णाग्रेत्यादिमण्डनम् ॥ ३५ ॥
भाण्डीरे क्रीडनं शैलोद्धारणाद्यं च चेष्टितम् ।
पौगण्डमध्य एवायं हारिदर्व्यिन् विराजते ॥ ३६ ॥
माधुर्य्याद्भुतरूपत्वात्कैशोराग्रांशभागिव ।
वेणी नितम्बलम्बाग्रा लीलाऽलकलताद्युतिः ॥ ३७ ॥
अंसयोस्तुङ्गतेत्यादि पौगण्डे चरमे सति ।
उष्णीषे वक्रिमा लीलासरसीरुहपाणिता ॥ ३८ ॥
काश्मीरेणोर्ध्वपुण्ड्राद्यमिह मण्डनमीरितम् ।
अत्र भङ्गी गिरा नर्मसखैः कर्णकथारसः ॥ ३९ ॥
एषु गोकुलबालानां श्रीश्लाघेत्यादिचेष्टितम् ।
कैशोरम् पूर्वमेवोक्तं सङ्क्षेपेणोच्यते ततः ॥ ४० ॥
प्रायः किशोर एवायं सर्वभक्तेषु भासते ।
तेन यौवनशोभाऽस्य नेह का चित्प्रपञ्चिता ॥ ४१ ॥
नियुद्धकन्दुकद्यूतवाह्यवाहादिकेलिभिः ।
लगुडालगुडि क्रीडासङ्गरैश्चास्य तोषणम् ॥ ४२ ॥
पल्यङ्कासनदोलासु सह स्वापोपवेशनम् ।
चारुचित्रपरीहासो विहारः सलिलाशये ॥ ४३ ॥
युग्मत्वे लास्यगानाद्याः सर्वसाधारणाः क्रियाः ।
युक्तायुक्तादिकथनं हितकृत्ये प्रवर्त्तनम् ॥ ४४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रायः पुरःसरत्वाद्याः सुहृदामीरिताः क्रियाः ।
ताम्बूलाद्यर्पणं वक्त्रे तिलकस्थासकक्रिया ॥ ४५ ॥
पत्राङ्कुरविलेखादि सखीनां कर्म कीर्त्तितम् ।
निर्जितीकरणं युद्धे वस्त्रे धृत्वाऽस्य कर्षणम् ॥ ४६ ॥
पुष्पाद्याच्छेदनं हासात् कृष्णेन स्वप्रसाधनन् ।
हस्ताहस्तिप्रसङ्गाद्याः प्रोक्ताः प्रियसखक्रियाः ॥ ४७ ॥
दूत्यं व्रजकिशोरीषु तासां प्रणयगामिता ।
ताभिः केलिकलौ साक्षात्सख्युः पक्षपरिग्रहः ॥ ४८ ॥
असाक्षात्स्वस्वपूर्वेशापक्षस्थापनचातुरी ।
कर्णाकर्णिकथाऽऽद्याश्च प्रियनर्मसखक्रियाः ॥ ४९ ॥
वन्यरत्नाद्यलङ्कारैर्माधवस्य प्रसाधनम् ।
पुरस्तौर्य्यत्रिकं तस्य गवां सम्भालनक्रियाः ॥ ५० ॥
अङ्गसंवाहनं माल्यगुम्फनं बीजनादयः ।
एताः साधारणा दासैर्वयस्यानां क्रिया मताः ॥ ५१ ॥
पूर्वोक्तेष्वपराश्चात्र ज्ञेया धीरैर्यथोचितम् ।
औग्र्यं त्रासं तथाऽऽलस्यं वर्जयित्वाऽखिलाः परे ॥ ५२ ॥
रसे प्रेयसि भावज्ञैः कथिता व्यभिचारिणः ।
तत्रायोगे मदं हर्षं गर्वं निद्रां धृतिं विना ॥ ५३ ॥
योगे मृतिं क्लमं व्याधिं विनाऽपस्मृतिदीनते ।
विमुक्तसंभ्रमा या स्याद् विश्रम्भात्मा रतिर्द्वयोः ॥ ५४ ॥
प्रायः समानयोरत्र सा सख्यं स्थायिशब्दभाक् ।
विश्रम्भो गाढविश्वासविशेषो थन्त्रणोज्झितः ॥ ५२ ॥
एषा सख्यरतिर्वृद्धिं गच्छन्ती प्रणयः क्रमात् ।
प्रेमा स्नेहस्तथा राग इति पञ्चभिदोदिता ॥ ५६ ॥
प्राप्तायां संभ्रमादीनां योग्यतायामपि स्फुटम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्गन्धेनाप्यसंस्पृष्टा रतिः प्रणय उच्यते ॥ ५७ ॥
अत्रापि पूर्ववत्प्रोक्तास्तापाद्यास्ता दशा दश ।
प्रोक्तेयं विरहावस्था स्पष्टलीलाऽनुसारतः ॥ ५८ ॥
कृष्णेन विप्रयोगः स्यान्न जातु व्रजवासिनाम् ।
द्वयोरप्येकजातीयभावमाधुर्य्यभागसौ ॥ ५९ ॥
प्रेयान् कामपि पुष्णाति रसश्चित्तचमत्कृतिम् ।
प्रीते च वत्सले चापि कृष्णतद्भक्तयोः पुनः ॥ ६० ॥
द्वयोरन्योन्यभावस्य भिन्नजातीयता भवेत् ।
प्रेयानेव भवेत्प्रेयानतः सर्वरसेष्वयम् ॥ ६१ ॥
सख्यसंपृक्तहृदयैः सद्भिरेवानुबुध्यते ।

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ पश्चिमविभागे मुख्यभक्तिरसनिरूपणे प्रेयोभक्तिलहरी ॥ ३ ॥

मुख्य भक्तिरस निरूपणे वत्सल भक्ति

चतुर्थलहरी—

विभावाद्यैस्तु बात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः ।
एष बत्सलतामात्रः प्रोक्तो भक्तिरसो बुधैः ॥ १ ॥
कृष्णं तस्य गुरूंश्चात्र प्राहुरालम्बनान् बुधाः ।
श्यामाङ्गो रुचिरः सर्वसल्लक्षणयुतो मृदुः ॥ २ ॥
प्रियवाक् सरलो ह्रीमान् विनयी मान्यमानकृत् ।
दातेत्यादिगुणः कृष्णो विभाव इह कथ्यते ॥ ३ ॥
एवङ्गुणस्य चास्यानुग्राह्यत्वादेव कीर्त्तिता ।
प्रभावानास्पदतया वेद्यस्यात्र विभावता ॥ ४ ॥
अधिकंमन्यभावेन शिक्षाकारितयाऽपि च ।
लालकत्वादिनाऽप्यत्र विभावा गुरवो मताः ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रायः पुरःसरत्वाद्याः सुहृदामीरिताः क्रियाः ।
ताम्बूलाद्यर्पणं वक्त्रे तिलकस्थासकक्रिया ॥ ४५ ॥
पत्राङ्कुरविलेखादि सखीनां कर्म कीर्त्तितम् ।
निर्जितीकरणं युद्धे वस्त्रे धृत्वाऽस्य कर्षणम् ॥ ४६ ॥
पुष्पाद्याच्छेदनं हासात् कृष्णेन स्वप्रसाधनम् ।
हस्ताहस्तिप्रसङ्गाद्याः प्रोक्ताः प्रियसखक्रियाः ॥ ४७ ॥
दूत्यं व्रजकिशोरीषु तासां प्रणयगामिता ।
ताभिः केलिकलौ साक्षात्सख्युः पक्षपरिग्रहः ॥ ४८ ॥
असाक्षात्स्वस्वपूर्वेशापक्षस्थापनचातुरी ।
कर्णाकर्णिकथाऽऽद्याश्च प्रियनर्मसखक्रियाः ॥ ४९ ॥
वन्यरत्नाद्यलङ्कारैर्माधवस्य प्रसाधनम् ।
पुरस्तौर्य्यत्रिकं तस्य गवां सम्भालनक्रियाः ॥ ५० ॥
अङ्गसंवाहनं मास्यगुम्फनं बीजनादयः ।
एताः साधारणा दासैर्वयस्यानां क्रिया मताः ॥ ५१ ॥
पूर्वोक्तेष्वपराश्चात्र ज्ञेया धीरैर्यथोचितम् ।
औग्र्यं त्रासं तथाऽऽलस्यं वर्जयित्वाऽखिलाः परे ॥ ५२ ॥
रसे प्रेयसि भावज्ञैः कथिता व्यभिचारिणः ।
तत्रायोगे मदं हर्षं गर्वं निद्रां धृतिं विना ॥ ५३ ॥
योगे मृतिं क्लमं व्याधिं विनाऽपस्मृतिदीनते ।
विमुक्तसंभ्रमा या स्याद् विश्रम्भात्मा रतिर्द्वयोः ॥ ५४ ॥
प्रायः समानयोरत्र सा सख्यं स्थायिशब्दभाक् ।
विश्रम्भो गाढविश्वासविशेषो यन्त्रणोज्झितः ॥ ५५ ॥
एषा सख्यरतिर्वृद्धिं गच्छन्ती प्रणयः क्रमात् ।
प्रेमा स्नेहस्तथा राग इति पञ्चभिदोदिता ॥ ५६ ॥
प्रासायां संभ्रमादीनां योग्यतायामपि स्फुटम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तद्गन्धेनाप्यसंस्पृष्टा रतिः प्रणय उच्यते ॥ ५७ ॥
अत्रापि पूर्ववत्प्रोक्तास्तापाद्यास्ता दशा दश ।
प्रोक्तेयं विरहावस्था स्पष्टलीलाऽनुसारतः ॥ ५८ ॥
कृष्णेन विप्रयोगः स्यान्न जातु व्रजवासिनाम् ।
द्वयोरप्येकजातीयभावमाधुर्य्यभागसौ ॥ ५९ ॥
प्रेयान् कामपि पुष्णाति रसश्चित्तचमत्कृतिम् ।
प्रीते च वत्सले चापि कृष्णतद्भक्तयोः पुनः ॥ ६० ॥
द्वयोरन्योन्यभावस्य भिन्नजातीयता भवेत् ।
प्रेयानेव भवेत्प्रेयानतः सर्वरसेष्वयम् ॥ ६१ ॥
सख्यसंपृक्तहृदयैः सद्भिरेवानुबुध्यते ।

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ पश्चिमविभागे मुख्यभक्तिरसानिरूपणे प्रेयोभक्तिलहरी ॥ ३ ॥

मुख्य भक्तिरस निरूपणे वत्सल भक्ति

चतुर्थलहरी—

विभावाद्यैस्तु वात्सल्यं स्थायी पुष्टिमुपागतः ।
एष वत्सलतामात्रः प्रोक्तो भक्तिरसो बुधैः ॥ १ ॥
कृष्णं तस्य गुरूंश्चात्र प्राहुरालम्बनान् बुधाः ।
श्यामाङ्गो रुचिरः सर्वसल्लक्षणयुतो मृदुः ॥ २ ॥
प्रियवाक् सरलो ह्रीमान् विनयी मान्यमानकृत् ।
दातेत्यादिगुणः कृष्णो विभाव इह कथ्यते ॥ ३ ॥
एवङ्गुणस्य चास्यानुग्राह्यत्वादेव कीर्त्तिता ।
प्रभावानास्पदतया वेद्यस्यात्र विभावता ॥ ४ ॥
अधिकंमन्यभावेन शिक्षाकारितयाऽपि च ।
लालकत्वादिनाऽप्यत्र विभावा गुरवो मताः ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ते तु तस्यात्र कथिता व्रजराज्ञी व्रजेश्वरः ।
रोहिणी ताश्च बल्लव्यो याः पद्मजहृतात्मजाः ॥ ६ ॥
देवकी तत्सपत्न्यश्च कुन्ती चानकदुन्दुभिः ।
सान्दीपनिमुखाश्चान्ये यथापूर्वममी वराः ॥ ७ ॥
व्रजेश्वरीव्रजाधीशौ श्रेष्ठौ गुरुजनेष्विमौ ।
कौमारादिवयोरूपवेषाः शैशवचापलम् ॥ ८ ॥
जल्पितस्मितलीलाऽऽद्या बुधैरुद्दीपनाः स्मृताः ।
आद्यं मध्यं तथा शेषं कौमारं त्रिविधं मतम् ॥ ९ ॥
स्थूलमध्योरुताऽपाङ्गश्वेतिमा स्वल्पदन्तता ।
प्रव्यक्तमार्दवाद्यं च कौमारे प्रथमे सति ॥ १० ॥
अस्मिन्मुहुः पदक्षेपः क्षाणिके रुदितस्मिते ।
स्वाङ्गुष्ठपानमुत्तानशयनाद्यं च चेष्टितम् ॥ ११ ॥
अत्र व्याघ्रनखः कण्ठे रक्षातिलकमञ्जनम् ।
पट्टडोरी कटौ हस्ते सूत्रमित्यादि मण्डनम् ॥ १२ ॥
दृक्कटीभागलकताऽऽनग्नता च्छिद्रिकर्णता ।
कलोक्तिरिङ्गणाद्यं च कौमारे सति मध्यमे ॥ १३ ॥
घ्राणस्य शिखरे मुक्ता नवनीतं कराम्बुजे ।
किङ्किण्यादि च कट्यादौ प्रसाधनमिहोदितम् ॥ १४ ॥
अत्र किञ्चित्कृशं मध्यमीषत्प्रथितभागुरः ।
शिरश्च काकपक्षाढ्यं कौमारे चरमे सति ॥ १५ ॥
घटी फणपटी चात्र किञ्चिद्वन्यविभूषणम् ।
लघुवेत्रकरत्वादि मण्डनं परिकीर्त्तितम् ॥ १६ ॥
वत्सरक्षा व्रजाभ्यर्णे वयस्यैः सह खेलनम् ।
पावशृङ्गदलादीनां बादनाद्यत्र चेष्टितम् ॥ १७ ॥
पौगण्डादि पुरैवोक्तं तेन संक्षिप्य लिख्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नव्येन यौवनेनापि दीव्यन् गोपेन्द्रनन्दनः ॥ १८ ॥
भाति केवलबात्सल्यभाजां पौगण्डभागिव ।
सुकुमारेण पौगण्डवयसा संगतोऽप्यसौ ॥ १९ ॥
किशोराभः सदा दासविशेषाणां प्रभासते ।
अनुभावाः शिरोघ्राणं करेणाङ्गाभिमार्जनम् ॥ २० ॥
आशीर्वादो निदेशश्च लालनं प्रतिपालनम् ।
हितोपदेशदानाद्या बत्सले परिकीर्त्तिताः ॥ २१ ॥
चुम्बाश्लेषौ तथाऽऽह्वानं नामग्रहणपूर्वकम् ।
उपालम्भादयश्चात्र मित्रैः साधारणी क्रिया ॥ २२ ॥
नैवात्र सात्त्विकाः स्तन्यस्रावः स्तम्भादयश्च ते ।
अत्रापस्मारसहिताः प्रीतोक्ताः व्यभिचारिणः ॥ २३ ॥
सम्भ्रमादिच्युता या स्यादनुकम्प्येऽनुकम्पितुः ।
रतिः सैवात्र बात्सल्यं स्थायी भावो निगद्यते ॥ २४ ॥
यशोदाऽऽदेस्तु बात्सल्यरतिः प्रौढा निसर्गतः ।
प्रेमवत्स्नेहवद्भाति कदा चित्किल रागवत् ॥ २५ ॥
बहूनामपि सद्भावे वियोगेऽत्र तु के चन ।
चिन्ताविषादनिर्वेदजाड्यदैन्यानि चापलम् ॥ २६ ॥
उन्मादमोहावित्याद्या अत्युद्रेकं व्रजन्त्यसी ।
स्वीकुर्वते रसमिमं नाट्यज्ञा अपि के चन ॥ २७ ॥
अप्रतीतौ हरिरतेः प्रीतस्य स्यादपुष्टता ।
प्रेयसस्तु तिरोभावो बत्सलस्यास्य न क्षतिः ॥ २८ ॥
एषा रसत्रयी प्रोक्ता प्रीतादिः परमाद्भुता ।
तत्र केषु चिदप्यस्या सङ्कुलत्वमुदीर्य्यते ॥ २९ ॥
सङ्कर्षणस्य सख्यं तु प्रीतिबात्सल्यसङ्गतम् ।
युधिष्ठिरस्य बात्सल्यं प्रीत्या सख्येन चान्वितम् ॥ ३० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आहुकप्रभृतीनां तु प्रीतिर्वात्सल्यमिश्रिता ।
जरदाभीरिकाऽऽदीनां वात्सल्यं सख्यमिश्रितम् ॥ ३१ ॥
माद्रेयनारदादीनां सख्यं प्रीत्या करम्बितम् ।
रुद्रताक्ष्योर्द्धवादीनां प्रीतिः सख्येन मिश्रिता ॥ ३२ ॥
अनिरुद्धादिनप्तॄणामेव के चिद्बभाषिरे ।
एवं केषु चिदन्येषु विज्ञेयं भावमिश्रणम् ॥ ३३ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ पश्चिमविभागे मुख्यभक्तिरस-
निरूपणे वत्सलभक्तिरसलहरी ॥ ४ ॥

मुख्यभक्तिरस निरूपणे मधुरारत्य भक्ति

पञ्चमलहरी—

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सतां हृदि ।
मधुराख्यो भवेद्भक्तिरसोऽसौ मधुरा रतिः ॥ १ ॥
निवृत्तानुपयोगित्वाद् दुरूहत्वादयं रसः ।
रहस्यत्वाच्च संक्षिप्य विततात्रोऽपि लिख्यते ॥ २ ॥
अस्मिन्नालम्बनः कृष्णः प्रियास्तस्य च सुभ्रुवः ।
असमानोर्ध्वसौन्दर्य्यलीलावैदग्ध्यसम्पदाम् ॥ ३ ॥
आश्रयत्वेन मधुर हरिरालम्बनो मतः ।
प्रेयसीषु हरेरासु प्रवरा वार्षभानवी ॥ ४ ॥
उद्दीपना इह प्रोक्ता मुरलीनिस्वनादयः ।
अनुभावास्तु कथिता दृगन्तेक्षास्मितादयः ॥ ५ ॥
आलस्यौग्र्ये विना सर्वे विज्ञेया व्यभिचारिणः ।
स्थायी भावो भवत्यत्र पूर्वोक्ता मधुरा रतिः ॥ ६ ॥
राधामाधवयोरेव क्वापि भावः कदाऽप्यसौ ।
सजातीयविजातीयैर्नैव विच्छिद्यते रतिः ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स विप्रलम्भसम्भोगभेदेन द्विविधो मतः ।
स पूर्वरागो मानश्च प्रवासादिमयस्तथा ॥ ८ ॥
विप्रलम्भो बहुविधो विद्वद्भिरिह कथ्यते ।
प्रागसङ्गतयोर्भावः पूर्वरागो भवेद् द्वयोः ॥ ९ ॥
मानः प्रसिद्ध एवात्र प्रवासः सङ्गविच्युतिः ।
द्वयोर्मिलितयोर्भोगः संभोग इति कीर्त्यते ॥ १० ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ पश्चिमविभागे मुख्यभक्तिरसनिरूपणे मधुराख्यभक्तिरसलहरी ॥ ५ ॥

श्रीमद्भागवताद्यर्हशास्त्रदर्शितया दृशा ।
इयमाविष्कृता मुख्या पञ्चभक्तिरसी मया ॥ १ ॥
गोपालरूपशोभां दधदपि रघुनाथभावविस्तारी ।
तुष्यतु सनातनात्मा पश्चिमभागे रसाम्बुनिधेः ॥ २ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ मुख्यभक्तिरसनिरूपणनामा पश्चिमो विभागः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौणरसादिनिरूपकोत्तरविभागे

प्रथमलहरी—

हास्य रस भक्ति

भक्तिभरेण प्रीतिं कलयन्नुररीकृतव्रजासङ्गः ॥
तनुतां सनातनात्मा भगवान्मयि सर्वदा तुष्टिम् ॥ १ ॥
रसामृताब्धेर्भागेऽत्र तुरीये तूत्तरामिधे ।
रसः सप्तविधो गौणो मैत्रीबैरस्थितिर्मिथः ॥ २ ॥
रसाभासाश्च तेनात्र लहर्य्यो नव कीर्त्तिताः ।
प्रागत्रानियताधाराः कदाचित् क्वाप्युदित्वराः ॥ ३ ॥
गौणा भक्तिरसाः सप्त लेख्या हास्यादयः क्रमात् ।
भक्तानां पञ्चधोक्तानामेषां मध्यत एव हि ॥ ४ ॥
क्वाप्येकः क्वाप्यनेकश्च गौणेष्वालम्बनो मतः ।
वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं हासरतिर्गता ॥ ५ ॥
हास्यभक्तिरसो नाम बुधैरेष निगद्यते ।
अस्मिन्नालम्बनः कृष्णस्तथाऽन्योऽपि तदन्वयी ॥ ६ ॥
वृद्धाः शिशुमुखाः प्रायः प्रोक्ता धीरैस्तदाश्रयाः ।
विभावनादिवैशिष्ट्यात्प्रवराश्च क्व चिन्मताः ॥ ७ ॥
यच्चेष्टा कृष्णविषया प्रोक्तः सोऽत्र तदन्वयी ।
उद्दीपना हरेस्तादृग्वाग्वेषचारितादयः ॥ ८ ॥
अनुभावास्तु नासौष्ठगण्डविस्पन्दनादयः ।
हर्षालस्यावहित्थाऽऽद्या विज्ञेया व्यभिचारिणः ॥ ९ ॥
सा हासरतिरेवात्र स्थायिभावतयोदिता ।
षोढा हासरतिः स्यात् स्मितहसिते विहसितावहसिते च ॥१०॥
अपहसितातिहसितके ज्येष्ठादीनां क्रमाद् द्वे द्वे ।
विभावनादिवैचित्र्यादुत्तमस्यापि कुत्र चित् ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवेद्विहसिताद्यं च भावज्ञैरिति भण्यते ।
स्मितं त्वलक्ष्यदशनं नेत्रगण्डाविकासकृत् ॥ १२ ॥
तदेव दरसंलक्ष्यदन्ताग्रं हसितं भवेत् ।
सस्वनं दृष्टदशनं भवेद्विहसितं तु तत् ॥ १३ ॥
तच्चावहसितं फुल्लनासकुञ्चितलोचनम् ।
तच्चापहसितं साश्रुलोचनं कम्पितांसकम् ॥ १४ ॥
सहस्ततालं क्षिप्ताङ्गं तच्चातिहसितं विदुः ।
यस्य हासः स चेत् क्वापि साक्षान्नैव निबध्यते ॥ १५ ॥
तथाऽप्येष विभावादिसामर्थ्यादुपलभ्यते ।
एष हास्यरसस्तत्र कैशिकीवृत्तिविस्तृतौ ॥ १६ ॥
शृङ्गारादिरसोद्भेदाद्बहुधैव प्रपञ्चितः ।

इति भक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे गौणभक्तिरस-
निरूपणे हास्यभक्तिरसलहरी ॥ १ ॥

गौण भक्तिरस निरूपणे ऽद्भुत रस भक्ति

द्वितीयलहरी—

आत्मोचितैर्विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तचेतसि ।
सा विस्मयरतिर्नीताऽद्भुतभक्तिरसो भवेत् ॥ १ ॥
भक्तः सर्वविधोऽप्यत्र घटते विस्मयाश्रयः ।
लोकोत्तरक्रियाहेतुर्विषयस्तत्र केशवः ॥ २ ॥
तस्य चेष्टाविशेषाद्यास्तस्मिन्नुद्दीपना मताः ।
क्रियास्तु नेत्रविस्तारस्तम्भाश्रुपुलकादयः ॥ ३ ॥
आवेगहर्षजाड्याद्यास्तत्र स्युर्व्यभिचारिणः ।
स्थायी स्याद्विस्मयरतिः सा लोकोत्तरकर्मतः ॥ ४ ॥
साक्षादनुमितं चेति तच्च द्विविधमुच्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साक्षाद्वैन्द्रियकं दृष्टश्रुतसङ्कीर्त्तितादिकम् ॥ ५ ॥
अप्रियादेः क्रिया कुर्य्यान्नालौकिक्यपि विस्मयम् ।
असाधारण्यपि मनाक् करोत्येव प्रियस्य सा ॥ ६ ॥
प्रियात् प्रियस्य किमुत सर्वलोकोत्तरोत्तरा ।
इत्यत्र विस्मये प्रोक्ता रत्यनुग्रहमाधुरी ॥ ७ ॥

इति श्रीभक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे गौणभक्तिरस-
निरूपणेऽद्भुतभक्तिरसलहरी ॥ २ ॥

गौणभक्तिरस निरूपणे वीररस भक्ति

तृतीयलहरी—

सैवोत्साहरतिः स्थायी विभावाद्यैर्निजोचितैः ।
आनीयमाना स्वाद्यत्वं वीरभक्तिरसो भवेत् ॥ १ ॥
युद्धदानदयाधर्मैश्चतुर्धा वीर उच्यते ।
आलम्बन इह प्रोक्त एष एव चतुर्विधः ॥ २ ॥
उत्साहस्त्वेष भक्तानां सर्वेषामेव सम्भवेत् ।
परितोषाय कृष्णस्य दधदुत्साहमाहवे ॥ ३ ॥
सखा बन्धुविशेषो वा युद्धवीर इहोच्यते ।
प्रतियोद्धा मुकुन्दो वा तस्मिन्वा प्रेक्षके स्थिते ॥ ४ ॥
तदीयेच्छावशेनात्र भवेदन्यः सुहृद्वरः ।
प्रायः प्रकृतिशूराणां स्वपक्षैरपि कर्हि चित् ॥ ५ ॥
युद्धकेलिसमुत्साहो जायते परमाद्भुतः ।
कत्थितास्फोटविस्पर्धाविक्रमास्त्रग्रहादयः ॥ ६ ॥
प्रतियोधस्थिताः सन्तो भवन्त्युद्दीपना इह ।
कत्थिताद्याः स्वसंस्थाश्चेदनुभावाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७ ॥
तथैवाहोपुरुषिकाक्ष्वेडिताक्रोशबल्गनम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असहायेऽपि युद्धेच्छा समरादपलायनम् ॥ ८ ॥
भीताभयप्रदानाद्या विज्ञेयाश्चापरे बुधैः ।
चतुष्टयेऽपि वीराणां निखिला एव सात्त्विकाः ॥ ९ ॥
गर्वावेगधृतिव्रीडामतिहर्षावहित्थिकाः ।
अमर्षोत्सुकताऽसूयास्मृत्याद्या व्यभिचारिणः ॥ १० ॥
युद्धोत्साहरतिस्त्वस्मिन् स्थायिभावतयोदिता ।
या स्वशक्तिसहायाद्यैराहार्य्या सहजाऽपि वा ॥ ११ ॥
जिगीषा स्थेयसी युद्धे स युद्धोत्साह ईर्य्यते ।
सुहृदेव प्रतिभटो वीरे कृष्णस्य न त्वरिः ॥ १२ ॥
स भक्तिक्षोभकारित्वाद्रौद्रे त्वालम्बनो रसे ।
रागाभावो दृगादीनां रौद्रादस्य विभेदकः ॥ १३ ॥
द्विविधो दानवीरः स्यादेकस्तत्र बहुप्रदः ।
उपस्थितदुरापार्थत्यागी चापर उच्यते ॥ १४ ॥
सहसा दीयते येन स्वयं सर्वस्वमप्युत ।
दामोदरस्य सौख्याय प्रोच्यते स बहुप्रदः ॥ १५ ॥
संप्रदानस्य वीक्षाऽऽद्या अस्मिन्नुद्दीपना मताः ।
वाञ्छिताधिकदातृत्वं स्मितपूर्वाभिभाषणम् ॥ १६ ॥
स्थैर्य्यदाक्षिण्यधैर्य्याद्या अनुभावा इहोदिताः ।
वितर्कौत्सुक्यहर्षाद्या विज्ञेया व्यभिचारिणः ॥ १७ ॥
दानोत्साहरतिस्त्वत्र स्थायिभावतयोदिता ।
प्रगाढा स्थेयसी दित्सा दानोत्साह इतीर्य्यते ॥ १८ ॥
द्विधा बहुप्रदोऽप्येष विद्वद्भिरिह कथ्यते ।
स्यादाभ्युदायिकस्त्वेकः परस्तत्संप्रदानकः ॥ १९ ॥
कृष्णस्याभ्युदयार्थं तु येन सर्वस्वमर्प्यते ।
अर्थिभ्यो ब्राह्मणादिभ्यः स आभ्युदयिको भवेत् ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञातये हरये स्वीयमहन्ताममताऽऽस्पदम् ।
सर्वस्वं दीयते येन स स्यात्तत्संप्रदानकः ॥ २१ ॥
तद्दानं प्रीतिपूजाभ्यां भवेदित्युदितं द्विधा ।
प्रीतिदानं तु तस्मै यद्दद्याद् बन्ध्वादिरूपिणे ॥ २२ ॥
पूजादानं तु तस्मै यद्विप्ररूपाय दीयते ।
उपस्थितदुरापार्थत्याग्यसौ येन नेष्यते ॥ २३ ॥
हरिणा दीयमानोऽपि साष्टर्चादिस्तुष्यता वरः ।
पूर्वतोऽत्र विपर्य्यस्तकारकत्वं द्वयोर्भवेत् ॥ २४ ॥
अस्मिन्नुद्दीपनाः कृष्णकृपाऽऽलापस्मितादयः ।
अनुभावास्तदुत्कर्षवर्णनद्रढिमादयः ॥ २५ ॥
अत्र संचारिता भूम्ना धृतेरेव समीक्ष्यते ।
त्यागोत्साहरतिर्धीरैः स्थायी भाव इहोदितः ॥ २६ ॥
त्यागेच्छा तादृशी प्रौढा त्यागोत्साह उदीर्य्यते ।
अयमेव भवन्नुच्चैःप्रौढभावविशेषभाक् ॥ २७ ॥
धुर्य्यादीनां तृतीयस्य वीरस्य पदवीं व्रजेत् ।
कृपाऽऽर्द्रहृदयत्वेन खण्डशो देहमर्पयन् ॥ २८ ॥
कृष्णायाच्छन्नरूपाय दयावीर इहोच्यते ।
उद्दीपना इह प्रोक्तास्तदार्त्तिव्यञ्जनादयः ॥ २९ ॥
निजप्राणव्ययेनापि विपन्नत्राणशीलता ।
आश्वासनोक्तयः स्थैर्य्यमित्याद्यास्तत्र विक्रियाः ॥ ३० ॥
औत्सुक्यमतिहर्षाद्या ज्ञेयाः संचारिणो बुधैः ।
दयोत्साहरतिस्त्वत्र स्थायिभाव उदीर्य्यते ॥ ३१ ॥
दयोद्रेकभृदत्साहो दयोत्साह इहोदितः ।
हरेश्चेत्तत्त्वविज्ञानं नैवास्य घटते दया ॥ ३२ ॥
तदभावे त्वसौ दानवीरेऽन्तर्भवति स्फुटम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैष्णवत्वाद्रतिः कृष्णे क्रियतेऽनेन सर्वदा ॥ ३३ ॥
कृताऽत्र द्विजरूपे च भक्तिस्तेनास्य भक्तता ।
अन्तर्भावं वदन्तोऽस्य दानवीरे दयाऽऽत्मनः ॥ ३४ ॥
वोपदेवादयो धीरा वीरमाचक्षते त्रिधा ।
कृष्णैकतोषणे धर्मे यः सदा परिनिष्ठितः ॥ ३५ ॥
प्रायेण धीरशान्तस्तु धर्मवीरः स उच्यते ।
उद्दीपना इह प्रोक्ताः सच्छास्त्रश्रवणादयः ॥ ३६ ॥
अनुभावा नयास्तिक्यसहिष्णुत्वयमादयः ।
मतिस्मृतिप्रभृतयो विज्ञेया व्यभिचारिणः ॥ ३७ ॥
धर्मोत्साहरतिर्धीरैः स्थायी भाव इहोच्यते ।
धर्मैकाभिनिवेशस्तु धर्मोत्साहो मतः सताम् ॥ ३८ ॥
यज्ञः पूजाविशेषोऽस्य भुजाद्यङ्गानि वैष्णवः ।
ध्यात्वेन्द्राद्याश्रयत्वेन यदेष्वाहुतिरर्प्यते ॥ ३९ ॥
अयं तु साक्षात्तस्यैव निदेशात्कुरुते मखान् ।
युधिष्ठिरोऽम्बुधिः प्रेम्णां महाभागवतोत्तमः ॥ ४० ॥
दानादित्रिविधं वीरं वर्णयन्तः परिस्फुटम् ।
धर्म्मवीरं न मन्यन्ते कति चिद्धानिकादयः ॥ ४१ ॥

इति श्रीभक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे गौणभक्तिरसनिरूपणे वीरभक्तिरसलहरी ॥ ३ ॥

गौणभक्ति रस निरूपणे करुण रस भक्ति

चतुर्थलहरी —

आत्मोचितैर्विभावाद्यैर्नीता पुष्टिं सतां हृदि ।
भवेच्छोकरतिर्भक्तिरसोऽयं करुणाभिधः ॥ १ ॥
अव्युच्छिन्नमहानन्दोऽप्येष प्रेमविशेषतः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनिष्टाप्तेः पदतया वेद्यः कृष्णोऽस्य च प्रियः ॥ २ ॥
तथाऽनवाप्ततद्भक्तिसौख्यश्च स्वप्रिये जनः ।
इत्यस्य विषयत्वेन ज्ञेय आलम्बनस्त्रिधा ॥ ३ ॥
तत्तद्वेदी च तद्भक्त आश्रयत्वेन च त्रिधा ।
सोऽप्यौचित्येन विज्ञेयः प्रायः शान्तादिवर्जितः ॥ ४ ॥
तत्कर्मगुणरूपाद्या भवन्त्युद्दीपना इह ।
अनुभावा मुखे शोषो विलापः स्रस्तगात्रता ॥ ५ ॥
श्वासक्रोशनभूपातघातोरस्ताडनादयः ।
अत्राष्टौ सात्त्विका जाड्यनिर्वेदग्लानिदीनताः ॥ ६ ॥
चिन्ता विषाद औत्सुक्यचापलोन्मादमृत्यवः ।
आलस्यापस्मृतिव्याधिमोहाद्या व्यभिचारिणः ॥ ७ ॥
हृदि शोकयतयांऽशेन गता परिणतिं रतिः ।
उक्ता शोकरतिः सैव स्थायी भाव इहोच्यते ॥ ८ ॥
रतिं विनाऽपि घटते हासादेरुद्गमः क्व चित् ।
कदा चिदपि शोकस्य नास्य सम्भावना भवेत् ॥ ९ ॥
रतेर्भूम्ना क्रशिम्ना च शोको भूयान् कृशश्च सः ।
रत्या सहाविनाभावात्काप्येतस्य विशिष्टता ॥ १० ॥
कृष्णैश्वर्याद्यविज्ञानं कृतं नैषामविद्यया ।
किन्तु प्रेमोत्तररसविशेषेणैव तत्कृतम् ॥ ११ ॥
अतः प्रादुर्भवन् शोको लब्ध्वाऽप्युद्भटतां मुहुः ।
दुरूहामेव तनुते गतिं सौख्यस्य कामपि ॥ १२ ॥

इति श्रीभक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे गौणभक्तिरसनिरूपणे
करुणभक्तिरसलहरी ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चमलहरी—

नीता क्रोधरति पुष्टिं विभावाद्यैर्निजोचितैः ।
हृदि भक्तजनस्यासौ रौद्रभक्तिरसो भवेत् ॥ १ ॥
कृष्णो हितोऽहितश्चेति क्रोधस्य विषयस्त्रिधा ।
कृष्णे सखीजरत्याद्याः क्रोधस्याश्रयतां गताः ॥ २ ॥
भक्ताः सर्वविधा एव हिते चैवाहिते तथा ।
सखीक्रोधो भवेत्सख्याः कृष्णादत्याहिते सति ॥ ३ ॥
क्रोधो जरत्या वध्वादिसन्बन्धे प्रेक्षिते हरौ ।
गोवर्द्धनं महामल्लं विनाऽन्येषां व्रजौकसाम् ॥ ४ ॥
सर्वेषामेव गोविन्दे रतिः प्रौढा विराजते ।
हितस्त्रिधाऽनवहितः साहसी चेर्ष्युरित्यपि ॥ ५ ॥
कृष्णपालनकर्त्ताऽपि तत्कर्माभिनिवेशतः ।
क्व चित्तत्र प्रमत्तो यः प्रोक्तोऽनवहितोऽत्र सः ॥ ६ ॥
यः प्रेरको भयस्थाने साहसी स निगद्यते ।
ईर्ष्युर्मानघना प्रोक्ता प्रौढेर्ष्याक्रान्तमानसा ॥ ७ ॥
अहितः स्याद् द्विधा स्वस्य हरेश्चेति प्रभेदतः ।
अहितः स्वस्य स स्याद्यः कृष्णसम्बन्धबाधकः ॥ ८ ॥
अहितस्तु हरेस्तस्य वैरिपक्षो निगद्यते ।
सोल्लुण्ठहासवक्रोक्तिकटाक्षानादरादयः ॥ ९ ॥
कृष्णाहितहितस्थाः स्युरमी उद्दीपना इह ।
हस्तनिष्पेषणं दन्तघट्टेन रक्तनेत्रता ॥ १० ॥
दष्टौष्ठताऽतिभ्रुकुटी भुजास्फालनताडनाः ।
तूष्णीकता नतास्यत्वं निश्वासो भुग्नदृष्टिता ॥ ११ ॥
भर्त्सनं मूर्द्धविधुतिर्दृगन्ते पाटलच्छविः ।
भ्रूभेदाधरकम्पाद्या अनुभावा इहोदिता ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र स्तम्भादयः सर्वे प्राकट्यं यान्ति सात्त्विकाः ।
आवेगो जडता गर्वो निर्वेदो मोहचापले ॥ १३ ॥
असूयौग्र्यं तथाऽमर्षश्रमाद्या व्यभिचारिणः ।
अत्र क्रोधरतिः स्थायी स तु क्रोधस्त्रिधा मतः ॥ १४ ॥
कोपो मन्युस्तथा रोषस्तत्र कोपस्तु शत्रुगः ।
मन्युर्बन्धुषु ते पूज्यसमन्यूनास्त्रिधोदिताः ॥ १५ ॥
रोषस्तु दयिते स्त्रीणामतो व्यभिचरत्यसौ ।
हस्तपेषादयः कोपे मन्यौ तूष्णीकताऽऽदयः ॥ १६ ॥
दृगन्तपाटलत्वाद्या रोषे तु कथिताः क्रियाः ।
अस्मिन्न तादृशो मन्यौ वर्त्तते रत्यनुग्रहः ॥ १७ ॥
उदाहरणमात्राय तथाऽप्येष निदर्शितः ।
क्रोधाश्रयाणां शत्रूणां चैद्यादीनां स्वभावतः ।
क्रोधो रतिविनाभावान्न भक्तिरसतां व्रजेत् ॥ १८ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे गौणभक्तिरसनिरूपणे रौद्रभक्तिरसलहरी ॥ ५ ॥

गौणभक्तिरस निरुपणे भयानकरस भक्ति

षष्ठलहरी—

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः पुष्टिं भयरतिर्गता ।
भयानकाभिधो भक्तिरसो धीरैरुदीर्य्यते ॥ १ ॥
कृष्णश्च दारुणाश्चेति तस्मिन्नालम्बना द्विधा ।
अनुकम्प्येषु सागःसु कृष्णस्तस्य च बन्धुषु ॥ २ ॥
दारुणाः स्नेहतः शश्वत्तदनिष्टासिदर्शिषु ।
दर्शनाच्छ्रवणाच्चेति स्मरणाच्च प्रकीर्त्तिताः ॥ ३ ॥
विभावस्य भ्रुकुट्याद्यास्तस्मिन्नुद्दीपना मताः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखशोषणमुच्छ्वासः पराहत्य विलोकनम् ॥ ४ ॥
स्वसङ्गोपनमुद्घूर्णा शरणान्वेषणं तथा ।
क्रोशनाद्याः क्रियाश्चात्र सात्त्विकाश्चाश्रुवर्जिताः ॥ ५ ॥
इह सन्त्रासमरणचापलावेगदीनताः ।
विषादमोहापस्मारशङ्काद्या व्यभिचारिणः ॥ ६ ॥
अस्मिन् भयरतिः स्थायी भावः स्यादपराधतः ।
भीषणेभ्यश्च तत्र स्याद्बहुधैवापराधिता ॥ ७ ॥
तज्जा भीर्नापरत्र स्यादनुग्राह्यजनान्विता ।
आकृत्या ये प्रकृत्या ये ये प्रभावेण भीषणाः ॥ ८ ॥
एतदालम्बना भीतिः केवलप्रेमशालिषु ।
नारीबालादिषु तथा प्रायेणात्रोपजायते ॥ ९ ॥
आकृत्या पूतनाऽऽद्याः स्युः प्रकृत्या दुष्टभूभुजः ।
भीषणास्तु प्रभावेण सुरेन्द्रगिरिशादयः ॥ १० ॥
सदा भगवतो भीतिं गता आत्यन्तिकीमपि ।
कंसाद्या रतिशून्यत्वादत्र नालम्बना मताः ॥ ११ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे गौणभक्तिरसनिरूपणे
भयानकभक्तिरसलहरी ॥ ६ ॥

गौणभक्तिरस निरूपणे बीभत्सरस भाव

सप्तमलहरी—

पुष्टिं निजविभावाद्यैर्जुगुप्सारतिरागता ।
असौ भक्तिरसो धीरैर्बीभत्साख्य इतीर्य्यते ॥ १ ॥
अस्मिन्नाश्रितशान्ताद्या धीरैरालम्बना मताः ।
अत्र निष्ठीवनं वक्त्रकूणनं घ्राणसंवृतिः ॥ २ ॥
धावनं कम्पपुलकप्रस्वेदाद्याश्च विक्रियाः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इह ग्लानिश्रमोन्मादमोहनिर्वेददीनताः ॥ ३ ॥
विषादचापलावेगजाड्याद्या व्यभिचारिणः ।
जुगुप्सारतिरत्र स्यात्स्थायी सा च विवेकजा ॥ ४ ॥
प्रायिकी चेति कथिता जुगुप्सा द्विविधा बुधैः ।
जातकृष्णरतेर्भक्तविशेषस्य तु कस्य चित् ॥ ५ ॥
विवेकोत्था तु देहादौ जुगुप्सा स्याद्विवेकजा ।
अमेध्यपूत्यनुभवात्सर्वेषामेव सर्वतः ॥ ६ ॥
या प्रायो जायते सेयं जुगुप्सा प्रायिकी मता ।
लब्धकृष्णरतेरेव सुष्ठु पूतं मनस्सदा ॥ ७ ॥
क्षुभ्यत्यहृद्यलेशेऽपि ततोऽस्यां रत्यनुग्रहः ।
हास्यादीनां रसत्वं यद् गौणत्वेनापि कीर्त्तितम् ॥ ८ ॥
प्राचां मतानुसारेण तद्विज्ञेयं मनीषिभिः ।
अमी पञ्चैव शान्ताद्या हरेर्भक्तिरसा मताः ॥ ९ ॥
एषु हासादयः प्रायो बिभ्रति व्यभिचारिताम् ।

इति भक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे गौणभक्तिरस-
निरूपणे बीभत्सभक्तिरसलहरी ॥ ७ ॥

रसानां मैत्रीवैरस्थिति

अष्टमलहरी —

अथामीषां क्रमेणैव शान्तादीनां परस्परम् ।
मित्रत्वं शात्रवत्वं च रसानामभिधीयते ॥ १ ॥
शान्तस्य प्रीतबीभत्सधर्मवीराः सुहृद्वराः ।
अद्भुतश्चैष विज्ञेयः प्रीतादिषु चतुर्ष्वपि ॥ २ ॥
द्विषन्नस्य शुचिर्युद्धवीरो रौद्रो भयानकः ।
सुहृत्प्रीतस्य बीभत्सः शान्तो वीरद्वयं तथा ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैरी शुचिर्युद्धवीरो रौद्रश्चैकविभावकः।
प्रेयसस्तु शुचिर्हास्यो युद्धवीरः सुहृद्वराः॥ ४॥
द्विषो वत्सलबीभत्सरौद्रा भीष्मश्च पूर्ववत्।
वत्सलस्य सुहृद्धास्यः करुणो भीष्मभित्तथा॥ ५॥
शत्रुः शुचिर्युद्धवीरः प्रीतो रौद्रश्च पूर्ववत्।
शुचेर्हास्यस्तथा प्रेयान् सुहृदस्य प्रकीर्त्तितः॥ ६॥
द्विषो वत्सलबीभत्सशान्तरौद्रभयानकाः।
प्राहुरेकस्य सुहृदं वीरयुग्मं परे रिपुम्॥ ७॥
मित्रं हास्यस्य बीभत्सः शुचिः प्रेयान्सवत्सलः।
प्रतिपक्षस्तु करुणस्तथा प्रोक्तो भयानकः॥ ८॥
अद्भुतस्य सुहृद्वीरः पञ्च शान्तादयस्तथा।
प्रतिपक्षो भवेदस्य रौद्रो बीभत्स एव च॥ ९॥
वीरस्य त्वद्भुतो हास्यः प्रेयान् प्रीतस्तथा सुहृत्।
भयानको विपक्षोऽस्य कस्य चिच्छान्त एव च॥ १०॥
करुणस्य सुहृद्रौद्रो वत्सलश्च विलोक्यते।
वैरी हास्योऽस्य संभोगशृङ्गारश्चाद्भुतस्तथा॥ ११॥
रौद्रस्य करुणः प्रोक्तो वीरश्चापि सुहृद्वरः।
प्रतिपक्षस्तु हास्योऽस्य शृङ्गारो भीषणोऽपि च॥ १२॥
भयानकस्य बीभत्सः करुणश्च सुहृद्वरः।
द्विषस्तु वीरशृङ्गारहास्यरौद्राः प्रकीर्त्तिताः॥ १३॥
बीभत्सस्य भवेच्छान्तो हास्यः प्रीतस्तथा सुहृत्।
शत्रुः शुचिस्तथा प्रेयान् ज्ञेया युक्त्या परे च ते॥ १४॥
कथितेभ्यः परे ये स्युस्ते तटस्थाः सतां मताः।
सुहृदामिश्रणं सम्यगास्वाद्यं कुरुते रसम्॥ १५॥
द्वयोस्तु मिश्रणे साम्यं दुःशकं स्यात्तुलाधृतम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्मादङ्गाङ्गिभावेन मेलनं विदुषां मतम् ॥ १६ ॥
भवेन्मुख्योऽथ वा गौणो रसोऽङ्गी किल यत्र सः ।
कर्त्तव्यं तत्र तस्याङ्गं सुहृदेव रसो बुधैः ॥ १७ ॥
अथाङ्गित्वं प्रथमतो मुख्यानामिह लिख्यते ।
अङ्गतां यत्र सुहृदो मुख्या गौणाश्च बिभ्रति ॥ १८ ॥
केवले बत्सले नास्ति मुख्यस्य खलु सौहृदम् ।
अतोऽत्र बत्सले तस्य नतरां लिखिताऽङ्गता ॥ १९ ॥
हास्यादीनां तु गौणानां यदुदाहरणं कृतम् ।
तेनैषामङ्गिता व्यक्ता मुख्यानां च तथाऽङ्गता ॥ २० ॥
तथाऽप्यल्पविशेषाय किञ्चिदेव विलिख्यते ।
एवमन्यस्य गौणस्य ज्ञेया कविभिराङ्गिता ॥ २१ ॥
तथाऽत्र मुख्यगौणानां रसानामङ्गताऽपि च ।
सोऽङ्गी सर्वातिगो यः स्यान्मुख्यो गौणोऽथ वा रसः ॥ २२ ॥
स एवाङ्गं भवेदङ्गिपोषी संचारितां व्रजेत् ।
स्तोकाद्विभावनाज्जातः सम्प्राप्य व्यभिचारिताम् ॥ २३ ॥
पुष्णन्निजप्रभुं मुख्यं गौणस्तत्रैव लीयते ।
प्रोद्यन्विभावनोत्कर्षात्पुष्टिं मुख्येन लम्भितः ॥ २४ ॥
कुर्वता निजनाथेन गौणोऽप्यङ्गित्वमश्नुते ।
मुख्यस्त्वङ्गत्वमासाद्य पुष्णन्निन्द्रमुपेन्द्रवत् ॥ २५ ॥
गौणमेवाङ्गिनं कृत्वा निगूढनिजवैभवः ।
अनादिवासनोद्भासवासिते भक्तचेतसि ॥ २६ ॥
भात्येव न तु लीनः स्यादेष संचारिगौणवत् ।
अङ्गं मुख्यः स्वमत्राङ्गैर्भावस्तैरभिवर्द्धयन् ॥ २७ ॥
सजातीयैर्विजातीयैः स्वतन्त्रः सन् विराजते ।
यस्य मुख्यस्य यो भक्तो भवेन्नित्यनिजाश्रयः ॥ २८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अङ्गी स एव तत्र स्यान्मुख्योऽप्यन्योऽङ्गतां व्रजेत् ।
आस्वादोद्रेकहेतुत्वमङ्गस्याङ्गत्वमाङ्गिनि ॥ २९ ॥
तद्विना तस्य सम्पातो वैफल्यायैव कल्पते ।
यथा मृष्टरसालायां यवसादेः कथं चन ॥ ३० ॥
तच्चर्वणे भवेदेव सतृणाभ्यवहारिता ।
जनयत्येव वैरस्यं रसानां वैरिणा युतिः ॥ ३१ ॥
सुमृष्टपानकादीनां क्षारतिक्तादिना यथा ।
शुचेः सम्बन्धगन्धोऽपि कथं चिद्यदि वत्सले ॥ ३२ ॥
क चिद्भवेत्ततः सुष्ठु वैरस्यायैव कल्पते ।
एवमन्याऽपि विज्ञेया प्राज्ञै रसविरोधिता ॥ ३३ ॥
प्रायेणेयं रसाभासकक्षायां पर्य्यवस्यति ।
द्वयोरेकतरस्येह बाध्यत्वेनोपवर्णनम् ॥ ३४ ॥
स्मर्य्यमाणतयाऽप्युक्तौ साम्येन रचनेऽपि च ।
रसान्तरेण व्यवधौ तटस्थेन प्रियेण वा ॥ ३५ ॥
विषयाश्रयभेदे च गौणेन द्विषता सह ।
रत्यादिषु न वैरस्यं वैरिणोर्जनयेद्युतिः ॥ ३६ ॥
बाध्यत्वमत्र शान्तस्य शुचेरुत्कर्षवर्णनात् ।
विषयाश्रयभेदेऽपि मुख्येन द्विषता सह ॥ ३७ ॥
सङ्गतिः किल मुख्यस्य वैरस्यायैव जायते ।
अनुरक्ताधियो भक्ताः के चन ज्ञानवर्त्मनि ॥ ३८ ॥
शान्तस्याश्रयभिन्नत्वे वैरस्यं नानुमन्वते ।
भृत्ययोर्नायकस्येव निसर्गद्वेषिणोरपि ॥ ३९ ॥
अङ्गयोराङ्गिनः पुष्टौ भवेदेकत्र सङ्गतिः ।
मिथो वैरावपि द्वौ यौ भावौ धर्म्मसुतादिषु ॥ ४० ॥
कालादिभेदात्प्राकट्यं तौ बिन्दन्तौ न दुष्यतः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिरूढे महाभावे विरुद्धैर्विरसा युतिः ॥ ४१ ॥
न स्यादित्युज्ज्वले राधाकृष्णयोर्दर्शितं पुरा ।
क्वाप्यचिन्त्यमहाशक्तौ महापुरुषशेखरे ॥ ४२ ॥
रसावलिसमावेशः स्वादायैवोपजायते ।

इति भक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे रसानां-
मैत्रीवैरस्थितिलहरी ॥ ८ ॥

नवमलहरी—

पूर्वमेवानुशिष्टेन विकलाः रसलक्ष्मणा ।
रसा एव रसाभासा रसज्ञैरनुकीर्त्तिताः ॥ १ ॥
स्युस्त्रिधोपरसाश्चानुरसाश्चापरसाश्च ते ।
उत्तमा मध्यमाः प्रोक्ताः कनिष्ठाश्चेत्यमी क्रमात् ॥ २ ॥
प्राप्तैः स्थायिविभावानुभावाद्यैस्तु विरूपताम् ।
शान्तादयो रसा एव द्वादशोपरसा मताः ॥ ३ ॥
ब्रह्मभावात्परब्रह्मण्यद्वैताधिक्ययोगतः ।
तथा बीभत्सभूमादेः शान्तो ह्युपरसो भवेत् ॥ ४ ॥
कृष्णस्याग्रेऽतिधार्ष्ट्येन तद्भक्तेष्ववहेलया ।
स्वाभीष्टदेवतोऽन्यत्र परमोत्कर्षवीक्षया ॥ ५ ॥
मर्यादाऽतिक्रमाद्यैश्च प्रीतोपरसता मता ।
एकस्मिन्नेव सख्येन हरिमित्राद्यवज्ञया ॥ ६ ॥
युद्धभूमादिना चापि प्रेयानुपरसो भवेत् ।
सामर्थ्याधिक्यविज्ञानाल्लालनाद्यप्रयत्नतः ॥ ७ ॥
करुणस्यातिरेवादेस्तुर्य्यश्चोपरसो भवेत् ।
द्वयोरेकतरस्यैव रतिर्या खलु दृश्यते ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

याऽनेकत्र तथैकस्य स्थायिनः सा विरूपता।
विभावस्यैव वैरूप्यं स्थायिन्यत्रोपचर्य्यते ॥ ९ ॥
अत्यन्ताभाव एवात्र रतेः खलु विवक्षितः।
एतस्याः प्रागभावे तु शुचिर्नोपरसो भवेत् ॥ १० ॥
के चित्तु नायकस्यापि सर्वथा तुल्यरागतः।
नायिकास्वप्यनेकासु वदन्त्युपरसं शुचिम् ॥ ११ ॥
वैदग्ध्यौज्ज्वल्यविरहो विभावस्य विरूपता।
लतापशुपुलिन्दीषु वृद्धास्वपि स वर्तते ॥ १२ ॥
स्थायिऽनोत्र विरूपत्वमेकरागतयाऽपि चेत्।
घटेतासौ विभावस्य विरूपत्वेऽप्युदाहृति ॥ १३ ॥
शुचित्वौज्ज्वल्यवैदग्ध्यात्सुवेषत्वाच्च कथ्यते।
शृङ्गारस्य विभावत्वमन्यत्राभासता ततः ॥ १४ ॥
समयानां व्यतिक्रान्तिर्ग्राम्यत्वं धृष्टताऽपि च।
वैरूप्यमनुभावादेर्मनीषिभिरुदीरितम् ॥ १५ ॥
समयाः खण्डिताऽऽदीनां प्रिये रोषोदितादयः।
पुंसः स्मितादयश्चात्र प्रियया ताडनादिषु ॥ १६ ॥
एतेषामन्यथाभावः समयानां व्यतिक्रमः।
बालशब्दाद्युपन्यासो विरसोक्तिप्रपञ्चनम् ॥ १७ ॥
कटीकण्डूतिरित्याद्यं ग्राम्यत्वं कथितं बुधैः।
प्रकटप्रार्थनाऽऽदिः स्यात्सम्भोगादेस्तु धृष्टता ॥ १८ ॥
एवमेव तु गौणानां हासादीनामपि स्वयम्।
विज्ञेयोपरसत्वस्य मनीषिभिरुदाहृतिः ॥ १९ ॥
भक्तादिभिर्विभावाद्यैः कृष्णसम्बन्धवर्जितैः।
रसा हास्यादयः सप्त शान्तश्चानुरसा मताः ॥ २० ॥
एवमेवात्र विज्ञेया वीरादेरप्युदाहृतिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टावमी तटस्थेषु प्राकट्यं यदि बिभ्रति ॥ २१ ॥
कृष्णादिभिर्विभावाद्यैस्तदाऽप्यनुरसा मताः ।
कृष्णतत्प्रतिपक्षाश्चेद्विषयाश्रयतां गताः ॥ २२ ॥
हासादीनां तदा तत्र प्राज्ञैरपरसा मताः ।
एवमन्येऽपि विज्ञेयास्तेऽद्भुतापरसादयः ॥ २३ ॥
उत्तमास्तु रसाभासाः कैश्चिद्रसतयोदिताः ।
भावाः सर्वे तदाभासा रसाभासाश्च के चन ॥ २४ ॥
अमी प्रोक्ता रसाभिज्ञैः सर्वेऽपि रसनाद्रसाः ।
भारत्याद्याश्चतस्रस्तु रसावस्थानसूचिकाः ॥ २५ ॥
वृत्तयो नाट्यमातृत्वादुक्ता नाटकलक्षणे ।

इति भक्तिरसामृतसिन्धावुत्तरविभागे रसाभासलहरी ॥ ९ ॥

ग्रन्थस्य गौरवभयादस्या भक्तिरसाश्रियः ।
समाहृतिः समासेन मया सेयं विनिर्मिता ॥ १ ॥
गोपालरूपशोभां दधदपि रघुनाथभावविस्तारी ।
तुष्यतु सनातनोऽस्मिन्नुत्तरभागे रसामृताम्भोधेः ॥ २ ॥

इति भक्तिरसामृतसिन्धौ गौणभक्तिरसादिनिरूपणनामा चतुर्थो विभागः ।

रामाङ्गशक्र १४६२ गणिते शाके गोकुललमाधिष्ठितेनायम् ।
भक्तिरसामृतसिन्धुर्विटङ्कितः क्षुद्ररूपेण ॥ १ ॥

---

* इति श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धुः *
समाप्तः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

* श्रीः *

श्रीमदन्नम्भट्टविरचितः

तर्कसंग्रहः

न्यायबोधिनी पदकृत्य भाषाटीका
प्रश्नसंग्रहादि सहितः ।

सच
कचौड़ीगलीस्थ—
बाबू ठाकुरप्रसाद बुक्सेलर महोदयैः
स्वीये बम्बई यन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाश्यं नीतः ।

मूल्य १।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महामहोपाध्याय—
श्रीमदन्नम्भट्ट-विरचितः

तर्कसंग्रहः ।

श्रीगोवर्द्धनकृतन्यायबोधिनी-श्रीचन्द्रजसिंहकृत-
पदकृत्यव्याख्योपेतः ।

श्रीमोरेश्वरसदाशिवदेशमुखकृत
हिन्दीभाषाविभूषितः ।

काशीस्थगव्हर्नमेन्टसंस्कृतकालेजपरीक्षा-
प्रश्नपत्रसमलङ्कृतः ।

स च
कचौड़ीगलीस्थ—
श्रीयुत ठाकुरप्रसाद बुक्सेलरमहोदयैः
प्रकाशितः ।

अस्य पुनर्मुद्रणादिसर्वाधिकारः
प्रकाशकेन सुरक्षितः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक के दो शब्द ।

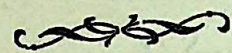

माननीय विद्वद्वर्य !

हमें इस बात का परमहर्ष है कि इधर थोड़े दिनों में मेरे यहाँ से जितने संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनको आपने सर्वाङ्ग-सुन्दर समझ कर अपनी अपनी पाठशालाओं में उपयुक्त आश्रय दिया है और सर्वत्र प्रचार में पूर्ण सहायता पहुँचाई है। आपके उसी प्रोत्साहन का यह फल है कि मैं पुनः आपकी सेवा में न्यायबोधिनी, पदकृत्य तथा सरल हिन्दी टीका सहित तर्कसंग्रह को लेकर उपस्थित हुआ हूं।

यह तर्कसंग्रह काशी, कलकत्ता और बिहार आदि परीक्षा में पाठ्यरूप से निर्धारित है।

मेरे यहाँ प्रकाशित इस तर्कसंग्रह में सरल हिन्दी अनुवाद तथा अनेकों वर्ष के प्रश्नपत्र रहने से यह संस्करण प्रथमा परीक्षार्थी विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

आशा है कि आप मेरे यहाँ की और और पुस्तकों की तरह इस पुस्तक को भी अपनाकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

आपका सेवकः—

ठाकुरप्रसाद बुक्सेलर,

(बनारस)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

तर्कसंग्रह–विषयानुक्रमणिका

विषयः	पृष्ठं
मङ्गलश्लोकः	१
बाललक्षणम्	१
उद्देशः	१
लक्षणम्	२
परीक्षा	२
सप्त पदार्थाः	२
शक्त्याद्यतिरिक्तपदार्थनिरासः	२
नव द्रव्याणि	२
अन्धकारस्य दशमद्रव्यत्वनिरासः	२
द्रव्यलक्षणम्	३
गुणाः	३
कर्माणि	३
सामान्यविभागः	३
विशेषाः	३
समवायः	३
अभावाः	३
पृथिवीनिरूपणम् १	३
अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसम्भवलक्षणानि	४
नित्यत्वलक्षणम्	४
जलनिरूपणम् २	५
तेजोनिरूपणम् ३	५
वायुनिरूपणम् ४	६
अतिव्याप्त्यादिनिरूपणम्	६
आकाशनिरूपणम् ५	७
कालनिरूपणम् ६	७
दिक् „ ७	८
आत्मा „ ८	८
मनः „ ९	८
रूपनिरूपणम् १	९
रसः २	१०
गन्धः ३	१०
स्पर्शः ४	११
पाकविचारः ५	११
सङ्ख्या ६	१२
परिमाणम् ७	१३
पृथक्त्वम् ८	१३
संयोग-विभागौ ९-१०	१३–१४
परत्वापरत्वे ११	१४
गुरुत्वम् १२	१५
द्रवत्वम् १३	१५
स्नेहः १४	१५
शब्दः १५	१६
बुद्धिनिरूपणम् १६	१६
स्मृतिः	१७
अनुभवः	१७
यथार्थानुभवः	१८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयः	पृष्ठं	विषयः	पृष्ठं
अयथार्थानुभवः	१८	हेत्वाभासाः	३९
करणलक्षणम्	१९	सव्यभिचारः	३९
कारणलक्षणम्	२०	विरुद्धः	४१
कार्यलक्षणम्	२०	सत्प्रतिपक्षः	४१
समवायिकारणलक्षणम्	२१	असिद्धः	४२
असमवायिकारणलक्षणम्	२२	बाधितः	४५
निमित्तकारणलक्षणम्	२३	उपमानम्	४६
प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणम्	२४	शब्दप्रमाणम्	४७
निर्विकल्पकलक्षणम्	२५	वाक्यार्थज्ञानहेतुः	४८
सविकल्पकलक्षणम्	२५	संशयः	५०
सन्निकर्षाः	२५	विपर्ययः	५१
अनुमानलक्षणम्	२९	तर्कः	५१
अनुमितिलक्षणम्	२९	स्मृतिः	५२
परामर्शः	३०	सुखम्	५२
व्याप्तिः	३१	दुःखम्	५२
पक्षधर्मता	३१	इच्छाद्वेषप्रयत्नाः	५२
स्वार्थानुमानम्	३२	धर्माधर्मौ	५३
परार्थानुमानम्	३३	संस्कारः	५३
पञ्चावयवाः	३३	कर्म	५६
अन्वयव्यतिरेकि	३५	सामान्यम्	५६
केवलान्वयि	३६	विशेषाः	५७
केवलव्यतिरेकि	३६	समवायः	५७
पक्षः	३८	प्रागभावः	५७
सपक्ष-विपक्षौ	३८	प्रध्वंसात्यन्ताभावान्योन्याभावाः—	५८

इति तर्कसंग्रहविषयसूची ।

१६ पृष्ठ से ५१ पर्यन्त (३५ पृष्ठ) केवल 'बुद्धि' नामक गुण का विचार है। "यथार्थानुभव" पर ही इतना कुछ लिखा गया है॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ

तर्कसंग्रह-प्रश्नपत्राणि ।

१९११

१—इन्द्रियाणां मध्ये कस्यैन्द्रियस्य कुत्रान्तर्भावः कृतः ? ।
२—स्पर्शः कुत्र कीदृशः ? किं तस्य लक्षणम् ? कतिविधश्च सः ? ।
३—कारणस्य लक्षणं तद्भेदांश्च सोदाहरणान् ब्रूत ।
४—अनुमानस्य स्वार्थपरार्थभेदात् को भेदः ? ।
५—सत्प्रतिपक्षहेत्वाभासस्य लक्षणमुदाहरणं च प्रतिपादनीयम् ।
६—अयथार्थानुभवस्य सोदाहरणान् भेदान् प्रतिपादयत ।
७—केषामिन्द्रियाणां सत्ताग्राहकत्वम् ? ।

१९१२

१—तेजसो लक्षणं तद्भेदांश्च सविस्तरं ब्रूत ।
२—रूपं कुत्र कीदृशं किञ्च तल्लक्षणम् ? कस्मिन्प्रत्यक्षे तस्योपयोगश्चेति लिख ।
३—केवलान्वयिनो लिङ्गस्य लक्षणं स्वरूपं च वर्णनीयम् ।
४—सव्यभिचारपदार्थः कतिविधः कानि वा तेषामुदाहरणानि ? ।
५—उपमानप्रमाणस्य प्रयोजनं स्वरूपं च प्रदर्शनीयम् ।

१९१३

१—मनसो लक्षणं तत्रत्यपदानां कृत्यञ्च ब्रूहि ।
२—रसः कुत्र कीदृशः किंलक्षणकः कतिविधश्च ? ।
३—बाधितहेत्वाभासस्य लक्षणमुदाहरणञ्चोच्यताम् ।
२—आकाङ्क्षाया लक्षणं प्रयोजनञ्च किम् ? ।
५—आत्ममात्रविशेषगुणत्वं केषां साधर्म्यम् ?

१९१५

१—किंलक्षणको वायुरिन्द्रियत्वं वा कस्मिन्वायोः ? ।
२—केषां द्रव्याणां विभुत्वं किं च तदिति ब्रूहि ।
३—रूपं किंलक्षणकं कतिविधं कुत्र च कीदृशम् ? ।
४—के गुणा नवद्रव्यवृत्तयः ? ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५—करणस्य कारणस्य च किं लक्षणं ? कस्तयोर्भेदः ? ।
६—केवलव्यतिरेकिणो लिङ्गस्य लक्षणमुदाहरणञ्चोच्यताम् ।
७—संस्कारः कतिविधः ? कुत्र च कीदृशः ? ।

१९१६

१—आकाशस्य किं लक्षणम्, किञ्च तत्र विभुत्वम् ? ।
२—यथार्थानुभवः कतिविधः ? किञ्च तत्र याथार्थ्यम् ।
३—किंलक्षणकः स्पर्शः कतिविधः कुत्र च कीदृशः ? ।
४—असमवायिकारणस्य लक्षणं सोदाहरणं ब्रूत ।
५—प्रत्यक्षज्ञानहेतवः सन्निकर्षाः के ?, कानि तेषामुदाहरणानि ?
६—'व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः' इत्यत्र व्याप्तेः पक्षधर्मतायाश्च स्वरूपं प्रदर्श्य अनुमानस्य कतिविधत्वं तदुच्यताम् ।
७—वाक्यं कतिविधं, तदर्थज्ञाने कानि करणानि ? ।

१९१७

१—पृथिव्याः किं लक्षणम् ? कतिधा च सा ? ।
२—रूपस्य लक्षणं प्रतिपदव्याप्तिप्रदर्शनपुरस्सरं व्याख्यायताम् ।
३—कारणस्य किं लक्षणम्, कतिविधञ्च तत् ।
४—स्वार्थानुमानं परार्थानुमानञ्च उदाहरणद्वारा प्रदर्श्यताम् ।
५—लिङ्गं कतिविधम् ।
६—हेत्वाभासाः के ? कानि च तेषामुदाहरणानि ।

१९१८

१—आकाशस्य किं लक्षणम् ? ।
२—आत्मा कतिविधः ? ।
३—परिमाणस्य किं लक्षणं कतिविधं च तत् ।
४—यथार्थानुभवः कतिविधः ? ।
५—प्रत्यक्षज्ञानहेतुसन्निकर्षः कतिविधः ? ।
६—वाक्यार्थज्ञाने को हेतुः ? ।

१९१९

१—तर्कसंग्रह इत्यत्र कः समासः ? ।
२—तर्जः कतविधम् ।
३—स्पर्शस्य किं लक्षणम् ? ।
४—कारणं कतिविधम् ।
५—बुद्धेः किं लक्षणम् ? ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६—संस्कारः कतविधः ? ।
७—कर्म कतिविधम् ? ।

१९२०

१—वायोर्लक्षणमवान्तरभेदपुरःसरं ब्रूहि ।
२—किंलक्षणं रूपं कतविधं कुत्र च कीदृशम् ? ।
३—यथार्थानुभवः कतिविधः, किञ्च तत्र याथार्थ्यम् इति सोदाहरणं प्रदर्शय ।
४—लिङ्गं कतिविधं कानि तेषामुदाहरणानि ।
५—उपाधेर्लक्षणं सोदाहरणं प्रदर्श्यताम् ।
६—उपमानस्य किं फलं ? कया च प्रणाल्या तद्भवति ।

१९२१

१—किंलक्षणकं रूपं कतिविधं कुत्र च कीदृशम् १४
२—परिमाणस्य लक्षणं प्रतिपदव्यावृत्तिप्रदर्शनपुरस्सरं लेख्यम् । १४
३—इन्द्रियार्थसन्निकर्षाः के, कानि च तेषामुदाहरणानि । १४
४—केवलव्यतिरेकिणो लिङ्गस्य लक्षणमुदाहरणं च वक्तव्यम् । १४
५—संस्कारः कतिविधः कुत्र च कीदृशस्तद्गोचरत्वं कस्य ? ।
६—कारणात्करणस्य को भेदः ? किं च तल्लक्षणम् । १४
७—अनैकान्तिकहेत्वाभासः कतिविधः, तस्य लक्षणं च किम् ? १६

१९२२

१—रूपस्य लक्षणं सपदकृत्यमुक्त्वा तत् कतविधं कुत्र च कीदृशम् ? । कानि च रूपवन्ति द्रव्याणि ? स्पष्टं लिखत ।
२—द्रवत्वस्य किं लक्षणम्, तच्च कतिविधम्, कुत्र च कीदृशमिति सोदाहरणं लेख्यम् ।
३—प्रत्यक्षज्ञाने करणीभूताः सन्निकर्षाः के, कानि च तदुदाहरणानीति स्पष्टं वाच्यम् ।
४—स्वार्थानुमानपरार्थानुमानयोः को भेदः ?
५—सत्प्रतिपक्षस्य किं लक्षणम्, किञ्चोदाहरणमिति साधु लिख ।
६—पक्षधर्मता-परामर्श-सामान्यशब्दानामर्था लेख्याः ।
७—संशयविपर्ययोः को भेदः ? । सप्तपदार्थमध्ये कुत्रानयोरन्तर्भावः ।
८—शक्तिः सप्तपदार्थातिरिक्ता नवेति विविच्य लक्षणस्य लक्षणं सपदकृत्यं लिख ।

१९२३

१—तेजसो लक्षणं तद्विभागं च प्रदर्शय । १४
२—परत्वाऽपरत्वयोर्लक्षणं विभागं च प्रदर्श्य कुत्र कीदृशं वर्तते तत्प्रदर्शय । १४
३—समवायिकारणाऽसमवायिकारणयोर्लक्ष्ये समन्वयः क्रियताम् । १४
४—त्रिविधस्य लिङ्गस्य लक्षणान्युदाहरणानि च सुस्पष्टं लिख । १४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५—विरुद्धस्य सन्प्रतिपक्षस्य च लक्षणं सोदाहरणं निरूपय । १६
६—वाक्यार्थज्ञाने के हेतवः ? तेषां लक्षणान्युदाहरणानि च स्पष्टीकुरु १४
७—अयथार्थानुभवस्य किं लक्षणम् ? स च कतिविधः ? । १४

१९२४

१—आत्मनो लक्षणं वक्तव्यं, विभागश्च प्रदर्शनीयः ।
२—स्पर्शलक्षणं तत्पदकृत्यप्रदर्शनपुरस्सरं प्रदर्श्य तद्भेदान् प्रतिपाद्य स कुत्र कीदृश इति निरूप्यताम् ।
३—अयथार्थानुभवस्य लक्षणं तत्पदकृत्यप्रदर्शनपुरस्सरं लिखित्वा तद्विभागः प्रदर्शनीयः
४—अनुमानस्य द्वैविध्यं निरूप्य अवयवा निरूप्यन्ताम् ।
५—असिद्धस्य विभागं प्रदर्श्य तदुदाहरणानि लिख्यन्ताम् ।
१—कर्मस्वरूपं प्रदर्श्य तद्भेदाः प्रदर्श्यन्ताम् ।
७—चतुर्विधानामभावानां, लक्षणान्युदाहरणानि च लिख्यन्ताम् ।

१९२५

१—कारणं कतिविधम् किंच तस्य लक्षणमेतत्सर्वं सविस्तरमुपपाद्यताम् । २४
२—प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः कतिविधः ? । १४
३—लिङ्गं कतिविधम् ? । १४
४—हेत्वाभासाः के कानि च तेषामुदाहरणानि ? । १४
५—वाक्यार्थबोधहेतवः के ? ।
६—मनसः किं लक्षणम् ? १४
७—रूपस्य लक्षणं प्रतिपदव्यावृत्तिप्रदर्शनपूर्वकं व्याख्यायताम् । २६

१९२६

१—अभावः कतिविधः ? । २—अपां किं लक्षणम् । ३—सावयवद्रव्याणि निरवयवद्रव्याणि च कानि ? । ४—आत्मा कतिविधः ? किं च तस्य लक्षणम् ?।
५—अवयवाः के, कानि च तेषामुदाहरणानि ? ।
६—अयथार्थानुभवः कतिविधः ? । ७—उपाधेः किं लक्षणम् ।

१९२७

१—आत्ममनसी निरूपणीये । २—वाक्यस्य पञ्चावयवा निरूपणीयाः । ३—कतिविधोऽसिद्धस्तस्य लक्षणं लेख्यम् । ४—वाक्यार्थज्ञाने सोदाहरणा हेतवो निरूपणीयाः ।

१९२८

१—वायुः कतिविधः, किंच तस्य लक्षणमेतत्सर्वमुपपाद्यताम् । २—संशय-विपर्ययतर्काणां लक्षणानि लिख्यन्ताम् । ३—यथार्थानुभवस्य किं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्षणम् । ४—व्याप्यत्वाऽसिद्धस्य लक्षणं प्रदर्श्यताम् । ५—स्मृतिः कतिविधेति सविस्तरमुपपाद्यताम् । ६—लिङ्गं कतिविधमिति, सविस्तरं प्रतिपाद्यताम् । ७—कर्म कतिविधं किञ्च तस्य लक्षणम् ? ।

१९३१

१—संख्यायाः परिमाणस्य च लक्षणं विभागश्च सविस्तरमुपपाद्यताम् । १५
२—केवलान्वयिनो लक्षणं सोदाहरणमभिधेयम् १५
३—पक्षसपक्षविपक्षाणां कानि लक्षणानि ? । १५
४—स्वरूपासिद्धहेत्वाभासस्य, बाधहेत्वाभासस्य च किमुदाहरणम् ? । १५
५—उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणानां लक्षणानि प्रदर्श्यन्ताम् । १५
६—अयुतसिद्धयोः किं लक्षणम् ? । १०
७—प्रागभावप्रध्वंसाभावात्यन्ताभावान्योन्याभावानां लक्षणानि प्रदर्श्यन्ताम् । १५

१९३२

१—द्रव्यस्य किं लक्षणम् ? अन्धकारस्य तल्लक्षणाक्रान्तत्वं वर्तते न वा ? वर्तते चेत्कथं नवैव द्रव्याणि, न वर्तते चेत्कुत्रान्तर्भावः ? इति स्पष्टं वाच्यम् ।
२—स्पर्शस्य लक्षणं सपदकृत्यमुक्त्वा स्पर्शः कतिविधः, कुत्र च कीदृशः कानि च स्पर्शवन्ति द्रव्याणीति स्पष्टं लिखत
३—प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः कतिविधः, कानि च तेषामुदाहरणानि १५
४—व्यतिरेकिणो लक्षणं सोदाहरणं प्रतिपाद्यताम् । १०
५—साधारणाऽसाधारणानुपसंहारिणां सोदाहरणानि लक्षणानि प्रदर्शनीयानि १५
६ विशेषस्य समवायस्य च किं लक्षणम् , कानि च नित्यद्रव्याणि ? १५
७—सामान्यस्य किं लक्षणम् ? कतिविधं च तत् ? १०

१९३३

१—कर्मणः किं लक्षणम् ? कतिविधं च तत् । के च ते भेदाः ? १५
२—रूपस्य लक्षणमुक्त्वा तत्कतिविधम् , कुत्र च कीदृशम् , कानि च रूपवन्ति द्रव्याणि इति स्पष्टमभिधीयताम् । १५
३—परत्वस्य अपरत्वस्य च लक्षणं प्रतिपाद्य कार्यकारणानां लक्षणानि प्रतिपादयत । १५
४—अन्वयव्यतिरेकिणो लक्षणं सोदाहरणं प्रतिपाद्यताम् । १५
५—विरुद्ध-सत्प्रतिपक्ष-स्वरूपासिद्ध-बाधितानां सोदाहरणानि लक्षणानि प्रदर्शनीयानि । १५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६—वाक्यार्थज्ञाने हेतवः के ? । तेषां स्वरूपं च किम् ? १५
७—ध्वंसप्रागभावयोः किं लक्षणम् ? १०

१९३४

१—पृथिव्यादीनां नवानां द्रव्याणां प्रत्येकं लक्षणं मूलकृताभिहितं प्रदर्शनीयम् । २०
२—अयथार्थानुभवो यथार्थानुभवश्च कतिविधः ? के च तयोर्लक्षणे ? । २०
३—प्रसारणाकुञ्चनाख्ययोः कर्मणोर्लक्षणे अभिधीयेताम् । १०
४—जातिः कतिविधा ? सा कुत्र वर्तते ? किं च तस्या लक्षणम् । १०
५—विशेषपदार्थः कुत्र वर्तते ? तस्य लक्षणमभिधाय विशदी क्रियताम् । १०
६—येषां पदार्थानां समवायसम्बन्धः सम्भवति ते पदार्था निर्दिश्यन्ताम् । १०
७—अन्योन्याभावात्यन्ताभावयोः सोदाहरणे लक्षणे निरूपणीये । १०

१९३५

१—पदार्थाः कति, कति च पदार्थानामवान्तरभेदाः ।
२—समवायिकारणाऽसमवायिकारणनिमित्तकारणानां लक्षणानि प्रदर्शनीयानि । घटस्य, घटरूपस्य च किं समवायिकारणम्, के चाऽसमवायिकारण-निमित्तकारणे ? ।
३—परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, शब्द, संस्काराणां कानि लक्षणानि ?
४—सव्यभिचार, सत्प्रतिपक्ष, बाधितानां लक्षणानि सोदाहरणं लेख्यानि । परन्तु सव्यभिचारस्योदाहरणं मनसापि परिकल्पनीयम् । १८
५—जातेः कि लक्षणम् ? त्रिषु द्रव्यगुणकर्मसु का जातिर्वर्त्तते ? का वा केवलं द्रव्यसामान्ये वर्त्तते ? ।
६—पृथ्वीगन्धयोः, घटघटत्वयोः, परमाणुविशेषपदार्थयोश्च कः सम्बन्धः ? । स सम्बन्धोऽन्यत्र वर्त्तते न वा ? । वर्त्तते चेत्कुत्र ? । १८
७—ध्वंसप्रागभावयोः सोदाहरणे लक्षणे निरूपणीये । ११

१९३६

१—कारणं कतिविधमिति निर्दिश्य प्रत्येकस्य लक्षणं सोदाहरणं ब्रूहि । १३
२—रूपस्य किं लक्षणं के च भेदाः ? कस्मिन् द्रव्ये कीदृशं रूपं वर्त्तते ? १३
३—(क) किं नाम स्वार्थानुमानम् ? तेन च परार्थानुमानस्य को भेदः ? १०
(ख) त्रिविधस्य लिङ्गस्य सोदाहरणं लक्षणं लेख्यम् । १२
२—वाक्यस्य किं लक्षणम् ? । वाक्यं कतिविधम् ? वाक्यार्थज्ञाने कानि कारणानि ? १३
५—हेत्वाभासः कः, कतिविधश्च सः ? । असिद्धस्य सोदाहरणान् भेदान् प्रदर्शय । १३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

६—गुणानां कियन्तो भेदाः ? के च ते ? जीवात्मनि के गुणा वर्त्तन्ते ? । १३

७—शब्दस्य, अभावस्य च साक्षात्कारे कः संन्निकर्षः ? सादृशः साक्षात्कारः कया प्रक्रियया सम्भवति ?

१९३८

१—कर्मणः किं लक्षणम् । कर्मणः कियन्तो भेदाः । के च ते । कानि च तेषां लक्षणानि । केषु द्रव्येषु कर्म वर्त्तते ! । १५

२—रूपस्य किं लक्षणम् । रूपं कतिविधम् । के च ते भेदाः । कस्मिन द्रव्ये कीदृशं रूपं वर्त्तते । कस्मिन् द्रव्ये रूपं न वर्त्तते । पृथिव्यां रूपं नित्यमनित्यं वा ? । १५

३—(क)प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः कतिविधः । के च ते भेदाः ? कानि च तेषामुदाहरणानि ? । १०

(ख) एवं प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसन्निकर्षः । इत्यस्याः पङ्क्तेराशयो हिन्दीभाषया वक्तव्यः । १०

४—असिद्धभेदाः सोदाहरणाः प्रदर्शनीयाः । उपाधेः किं लक्षणम् । साध्यव्यापकत्वं किम् ? साधनाव्यापकत्वं किम् । १५

५—(क)अनुपसंहारिणः किं लक्षणम् । तस्य किमुदाहरणम् । ५

(ख) शब्दो नित्यः कृतकत्वादित्यत्र को हेत्वाभासः । तस्य किं लक्षणम् । हिन्दीभाषया लक्षणसमन्वयः कार्यः । १०

६—(ख)शब्द–वाक्य–पदानां कानि लक्षणानि । आप्तस्य किं लक्षणम् । वाक्यं कतिविधम् । के च ते भेदाः ।

(ख)आत्मविशेषगुणाः कति । के च ते । तत्र के नित्याः अनित्याश्च । नित्याः कुत्र वर्त्तन्ते । अणित्याः कुत्र वर्त्तन्ते । १०

१९४६

१—वायोर्लक्षणं तद्भेदांश्च लिखत । २०

२—प्रत्यक्ष प्रमाया लक्षणं, सोदाहरणान् तद्भेदांश्च लिखत । १०

अथवा

परामर्शस्य पक्षधर्मतायाश्च लक्षणे लिखत ।

३—लिङ्गं कतिविधम् ? तेषां नामानि उदाहरणपूर्वकं लिखत । १५

अथवा

वाक्यार्थज्ञाने हेतूनां नामान्युल्लिख्य सन्निधेर्लक्षणं, कुत्र च तदभावात् शाब्दबोधो न भवति तल्लिख ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४—गुरुत्वस्य लक्षणं, गुरुत्वस्य मुख्यं कार्यञ्च किम्भवति, तल्लिखत। १०

अथवा

"निश्चितसाध्याभाववान् सपक्षः, यथा तत्रैव महानसम्" इत्यत्र तत्रैव शब्दस्य कोऽभिप्रायः ?

५—अयथार्थानुभवस्य भेदान् लक्षणोदाहरणपूर्वकं लिखत। २५

अथवा

संस्कारस्य भेदानां नामान्युल्लिख्य कस्मिन् द्रव्ये कीदृशः संस्कारो वर्त्तते तल्लिखत।

अथवा

अभावस्य भेदानां नामानि तेषामुदाहरणानि च लिखत।

१९४७

सूचना—पञ्चैव प्रश्नाः समावेयाः। षष्ठाष्टमावावश्यं समाधेयौ।

१—तेजसः किं लक्षणम् ?, कतिविधञ्च तत् ?, के च ते भेदाः ?, विषयः कतिविधः ?, के च ते भेदाः ?, स्पर्शस्य लक्षणं तद्भेदांश्च प्रदर्शनीयाः। पाकजस्पर्शः कुत्र वर्त्तते ? २०

२—कानि द्रव्याणि विभूनि। कानि च तेषां लक्षणानि। २०

३—संख्या-परिमाण-परत्वापरत्व-शब्दानां लक्षणानि प्रदर्श्य तेषां भेदाश्च प्रदर्शनीयाः। २०

४—संयुक्तसमवायसंयुक्तसमवेतसमवाययोरुदाहरणे प्रदर्श्य स्वसंस्कृतेन हिन्दीभाषया वा विशदीक्रियेताम्। २०

५—अनुमानस्य लक्षणं तद्भेदाश्च सोदाहरणा लेख्याः। २०

६—सव्यभिचारस्य किं लक्षणम्, स कतिविधः। के च ते भेदाः, कानि च तदुदाहरणानि। २०

७—व्याप्यत्वासिद्धस्य किं लक्षणम् ? उपाधेः किं लक्षणम् ? साध्यव्यापकत्वं साधनाव्यापकत्वञ्च किम् ? २०

८—अनुभवस्य किं लक्षणम् ? यथार्थानुभवस्य किं लक्षणम् ? कतिविधः सः ? के च तद्भेदाः ? कानि च तेषां लक्षणानि ? २०

९—कर्मसामान्यसमवायविशेषाणां कानि लक्षणानि ? कर्म कतिविधम् ? के च तद्भेदाः ? कानि च तेषां लक्षणानि ? २०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय, काशी

श्रीः

तर्कसंग्रहः

न्यायबोधिनी–पदकृत्य-भाषा-प्रश्नसंग्रहादिसहितः ।

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।
बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥ १ ॥

न्यायबोधिनी ।

अखिलागमसंचारि श्रीकृष्णाख्यं परं महः ।
ध्यात्वा गोवर्धनसुधीस्तनुते न्यायबोधिनीम् ॥ १ ॥

चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थमिष्टदेवतानमस्कारात्मकं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं ग्रन्थादौ निबध्नाति—निधायेति ॥ १ ॥

पदकृत्यम् ।

श्रीगणेशं नमस्कृत्य पार्वतीशंकरं परम् ।
मया चन्द्रजसिंहेन क्रियते पदकृत्यकम् ॥ १ ॥
यस्मादिदमहं मन्ये बालानामुपकारकम् ।
तस्माद्धितकरं वाक्यं वक्तव्यं विदुषा सदा ॥ २ ॥

विश्वेशं जगत्कर्तारं श्रीसाम्बमूर्तिं हृदि मनसि निधाय नितरां धारयित्वा गुरुवन्दनं च विधाय कृत्वेत्यर्थः। बालेति। अत्राधीतव्याकरण-काव्यकोशानधीतन्यायशास्त्रो बालः। व्यासादावतिव्याप्तिवारणायानधीतन्यायेति। स्तनंधयेऽतिप्रसक्तिवारणायाधीतव्याकरणेति। सुखेति। सुखेनानायासेन बोधाय पदार्थतत्त्वज्ञानायेत्यर्थः। तर्क्यन्ते प्रमितिविषयीक्रियन्ते इति तर्काः–द्रव्यादिसप्तपदार्थास्तेषां संग्रहः-संक्षेपेणोद्देशलक्षण-परीक्षा यस्मिन् स ग्रन्थः। नाममात्रेण वस्तुसंकीर्तनमुद्देशः। यथा द्रव्यं

(हिन्दी) हृदयमें विश्वपति परमात्माका ध्यान करके और गुरुजनोंकी वन्दना करके बालकोंके सुखपूर्वक बोध होनेके लिये "तर्क संग्रह" बनाया जाता है ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुणा इति । असाधारणधर्मो लक्षणम् । यथा गन्धवत्त्वं पृथिव्याः । लक्षितस्य लक्षणं संभवति न वेति विचारः परीक्षा । अत्रोद्देशस्य पक्षज्ञानं फलं लक्षणस्येतरभेदज्ञानं, परीक्षाया लक्षणे दोषपरिहार इति मन्तव्यम् ।

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः ।

(न्या०) अथ पदार्थान्विभजते—द्रव्येति । तत्र सप्तग्रहणं पदार्थत्वं द्रव्यादिसप्तान्यतमत्वव्याप्यमिति व्याप्तिलाभाय । ननु शक्तिपदार्थस्याष्टमस्य सत्त्वात्कथं सप्तैवेति । तथाहि—वह्निसंयुक्तेन्धनादौ सत्यपि मणिसंयोगे दाहो न जायते । तच्छून्येन तु जायते । अतो मणिसमवधाने शक्तिर्नश्यति मण्यभावदशायां दाहानुकूला शक्तिरुत्पद्यत इति कल्प्यते, तस्माच्छक्तिरतिरिक्तः पदार्थ इति चेन्न, मणेः प्रतिबन्धकत्वेन मण्यभावस्य कारणत्वेनैव निर्वाहे मणिसमवधानासमवधानाभ्यामनन्तशक्तितद्ध्वंसतत्प्रागभावकल्पनाया अन्याय्यत्वात् । तस्मात्सप्तैवेति सिद्धम् ॥

(हिन्दी) द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात ही पदार्थ हैं ।

तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ।

(न्या०) द्रव्याणि विभजते—पृथिवीति । नन्वन्धकारस्य दशमद्रव्यस्य सत्त्वात्कथं नवैवेति । तथाहि—नीलं तमश्चलतीति प्रतीतेर्नीलरूपाश्रयत्वेन क्रियाश्रयत्वेन च द्रव्यत्वं सिद्धम् । नच कलप्तद्रव्येष्वन्तर्भावात्कुतो दशमद्रव्यत्वमिति वाच्यम्, आकाशादिपञ्चकस्य वायोश्च नीरूपत्वान्न तेष्वन्तर्भावः । तमसो निर्गन्धत्वान्न पृथिव्यामन्तर्भावः । जलतेजसोः शीतोष्णस्पर्शवत्त्वान्न तयोरन्तर्भावः । तस्मात्तमसो दशमद्रव्यत्वं सिद्धमिति चेत् न, तेजोभावरूपत्वेनैवोपपत्तावतिरिक्ततत्कल्पनायां मानाभावात् । नच विनिगमनाविरहात्तेज एव तमोभावस्वरूपमस्त्विति वाच्यम्, तेजसोऽभावस्वरूपत्वे सर्वानुभूतोष्णस्पर्शाश्रयद्रव्यान्तरकल्पने गौरवात् । तस्मादुष्णस्पर्शगुणाश्रयतया तेजसो द्रव्यत्वं सिद्धम् । तमसि नीलत्वादिप्रतीतिस्तु भ्रान्तिरेव, दीपापसरणक्रियाया एव तत्र भानात् ॥

(हिन्दी) उन सात पदार्थोंमें पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन ये नव ही द्रव्य हैं, न तो इससे कम हैं न तो इससे अधिक ही हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प०) तत्रेति। तत्र सप्तपदार्थमध्ये इत्यर्थः। द्रव्याणि नवैवेत्यन्वयः। एवं तत्रेति पदं चतुर्विंशतिगुणा इत्यादिनाऽप्यन्वेति। द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं समवायिकारणत्वं वा द्रव्यसामान्यलक्षणम्।

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराश्चतुर्विंशतिगुणाः। उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनानि पञ्च कर्माणि।

(हिन्दी) रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार ये चौबीस गुण हैं। उत्क्षेपण (ऊपर फेंकना), अपक्षेपण (नीचे फेंकना) आकुञ्चन (बटोर लेना) प्रसारण (फैलाना) और गमन (चलना) ये पांच कर्म हैं।

परमपरं चेति द्विविधं सामान्यम्। नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव। समवायस्त्वेक एव। अभावश्चतुर्विधः—प्रागभावः प्रध्वंसाभावोऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावश्चेति।

इत्युद्देशग्रन्थः।

(प०) परमपरं चेति। परसामान्यमपरसामान्यमित्यर्थः। परत्वं चाधिकदेशवृत्तित्वम्। अपरत्वं न्यूनदेशवृत्तित्वम्॥

(हिन्दी) पर और अपर ये दो प्रकारके सामान्य हैं। विशेष केवल नित्यद्रव्योंमें रहते हैं और ये अनन्त हुआ करते हैं। समवाय एकही हुआ करता है। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव मेंसे अभाव चार प्रकारका है।

तत्र गन्धवती पृथिवी। सा द्विविधा। नित्याऽनित्याच। नित्या परमाणुरूपा। अनित्या कार्यरूपा। पुनस्त्रिविधा शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरमस्मदादीनाम्। इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ति। विषयो मृत्पाषाणादिः।

(न्या०) गन्धवतीति। गन्धवत्त्वं पृथिव्या लक्षणम्। लक्ष्या पृथिवी। पृथिवीत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम्। यद्धर्मावच्छिन्नं लक्ष्यं स धर्मो लक्ष्यतावच्छेदकः। यो धर्मो यस्यावच्छेदकः स तद्धर्मावच्छिन्नः। तथाच लक्ष्यतावच्छेदकं पृथिवीत्वं चेल्लक्ष्यता पृथिवीत्वावच्छिन्ना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं पृथिव्या लक्षणम्। एवं शीतस्पर्शवत्त्वादिलक्षणेषु जलादीनां लक्ष्यता, जलत्वादीनां लक्ष्यतावच्छेदकत्वं च बोध्यम्।

(प०) तदेव हि लक्षणं यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोषत्रयशून्यम्। यथा गोः सास्नादिमत्त्वम्। अव्याप्तिश्च लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम्। अत एव गोर्न कपिलत्वं लक्षणं तस्याव्याप्तिग्रस्तत्वात्। अतिव्याप्तिश्च लक्ष्यवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यवृत्तित्वम्। अत एव गोर्न शृङ्गित्वं लक्षणं तस्यातिव्याप्तिग्रस्तत्वात्। असंभवश्च लक्ष्यमात्रावृत्तित्वम्। यथा गोरेकशफवत्त्वं न लक्षणं तस्यासंभवग्रस्तत्वात्। नित्येति। ध्वंसभिन्नत्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्वम्। ध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ध्वंसभिन्नेति विशेषणम्। घटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्। ध्वंसप्रतियोगित्वं प्रागभावप्रतियोगित्वं वाऽनित्यत्वम्। यद्भोगायतनं तदेव शरीरं, चेष्टाश्रयो वा। इन्द्रियमिति। चक्षुरादावतिव्याप्तिवारणाय गन्धग्राहकमिति। कालादावतिप्रसक्तिवारणायेन्द्रियमिति। विषय इति। शरीरेन्द्रियभिन्नत्वे सत्युपभोगसाधनं विषयः। शरीरादावतिव्याप्तिनिरासाय सत्यन्तम्। परमाण्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्। कालादिवारणाय जन्यत्वे सतीत्यपि बोध्यम्॥

(हिन्दी) उन नव द्रव्योंमें पृथिवी गन्धवाली है अर्थात् गन्धवाले द्रव्यको पृथिवी कहते हैं। वह दो प्रकारकी है—नित्य और अनित्य। परमाणुरूप पृथिवी नित्य है और कार्यरूप पृथिवी अनित्य है। फिर—वह पूर्वोक्त पृथिवी शरीर, इन्द्रिय और विषय भेदसे तीन प्रकार की है। हमलोगोंका जो शरीर है वह शरीररूप पृथिवी है। नासिकाके अग्रभागमें रहनेवाला और गन्धको ग्रहण करनेवाला घ्राण नाम जो इन्द्रिय है, वह इन्द्रियरूप पृथिवी है। मिट्टी, पत्थर आदि विषयरूप पृथिवी है।

शीतस्पर्शवत्य आपः। ता द्विविधाः। नित्या अनित्याश्च। नित्याः परमाणुरूपाः। अनित्याः कार्यरूपाः। पुनस्त्रिविधाः शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरं वरुणलोके। इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति। विषयः सरित्समुद्रादिः।

(प०) शीतेति। तेज आदावतिव्याप्तिवारणाय शीतेति। आकाशवारणाय स्पर्शेति। कालादावतिप्रसक्तिवारणाय समवायसंबन्धेनेति पदं देयम्। इन्द्रियमिति। त्वगादावतिव्याप्तिवारणाय रसग्राहकमिति। रस-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेन्द्रियरससंनिकर्षादावतिव्याप्तिनिरासायेन्द्रियमिति। सरिदिति। आदिना तडागहिमकरकादीनां संग्रहः।

(हिन्दी) शीतल स्पर्शवाला जल है, अर्थात् जिसमें ठंढा स्पर्श रहे उसे जल कहते हैं, वह दो प्रकारका है—एक नित्य और एक अनित्य। परमाणुरूप जल नित्य जल है और कार्यरूप जल अनित्य जल है। फिर वह अनित्य जल तीन प्रकारका है—शरीर, इन्द्रिय और विषय भेदसे। जलीय शरीर, वरुण लोकमें प्रसिद्ध है, अर्थात् वरुणलोक वासियोंका शरीर जलका है। जिह्वाके अग्रभागमें रहनेवाला रसको ग्रहण करनेवाला "रसन" नामका जो इन्द्रिय है वही जलीय इन्द्रिय है।

उष्णस्पर्शवत्तेजः। तच्च द्विविधम्। नित्यमनित्यं च। नित्यं परमाणुरूपम्। अनित्यं कार्यरूपम्। पुनस्त्रिविधं-शरीरेन्द्रिय-विषयभेदात्। शरीरमादित्यलोके प्रसिद्धम्। इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति। विषयश्चतुर्विधो भौमदिव्योदर्याकरज-भेदात्। भौमं वह्न्यादिकम्। अविन्धनं दिव्यं विद्युदादि। भुक्तस्य परिणामहेतुरुदर्यम्। आकरजं सुवर्णादि।

(प०) उष्णेति। जलादावतिव्याप्तिनिरासायोष्णेति। कालादावति-प्रसङ्गवारणाय समवायसंबन्धेनेति पदं देयम्। इन्द्रियमिति। घ्राणादाव-तिव्याप्तिवारणाय रूपग्राहकमिति। कालादावतिव्याप्तिनिरसनायेन्द्रिय-मिति। भेदादिति पदं प्रत्येकमभिसंबध्यते। भौममिति। आदिपदेन खद्योतगततेजःप्रभृतेः परिग्रहः। विद्युदादीति। आदिनार्कचन्द्रादीनां परिग्रहः। भुक्तेति। भुक्तस्यान्नादेः पीतस्य जलस्य परिणामो जीर्णता तस्य हेतुरुदर्यमित्यर्थः। सुवर्णेति। आदिना रजतादिपरिग्रहः।

(हिन्दी) उष्ण स्पर्शवाला तेज है, अर्थात् जिसका स्पर्श उष्ण है उसे "तेज" कहते हैं। वह दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। परमाणु रूप तेज नित्य है और कार्यरूप तेज अनित्य है। फिर वह पूर्वोक्त तेज तीन प्रकारका है—शरीर, इन्द्रिय और विषयभेदसे। तैसज शरीर सूर्यलोकमें प्रसिद्ध है अर्थात् सूर्यलोकवासियोंका शरीर तैजस शरीर है। रूपको ग्रहण करनेवाला आंखोंकी काली पुतलीके अग्रभागमें रहनेवाला "चक्षु" नामक इन्द्रिय तैजस इन्द्रिय है। इसका विषय चार प्रकारका है—भौम, दिव्य, उदर्य और आकरज भेदसे। भू (पृथिवी) में होनेवाला अग्नि आदि तेज भौम तैजस विषय है। दिव्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(स्वर्ग) में होनेवाला और जलसे प्रकाशमान बिजली, सूर्य आदि तेज दिव्य तैजस विषय है। खाये हुएको पचानेवाली और उदरमें रहनेवाली अग्नि (जाठराग्नि) उदर्य तैजस विषय है। खानसे उत्पन्न होनेवाला सुवर्ण आदि आकरज तैजस विषय है।

रूपरहितः स्पर्शवान्वायुः। स द्विविधः नित्योऽनित्यश्च। नित्यः परमाणुरूपः। अनित्यः कार्यरूपः। पुनस्त्रिविधः। शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरं वायुलोके। इन्द्रियं स्पर्शग्राहकं त्वक् सर्वशरीरवर्ति। विषयो वृक्षादिकम्पनहेतुः। शरीरान्तःसंचारी वायुः प्राणः। स चैकोऽप्युपाधिभेदात्प्राणापानादिसंज्ञां लभते। ८

(न्या०) एवं पृथिव्यादित्रिकं निरूप्य वायुं निरूपयति—रूपरहित इति। रूपरहितत्वे सति स्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम्। सति सप्तम्या विशिष्टार्थकतया रूपरहितत्वविशिष्टस्पर्शवत्त्वं वायोर्लक्षणम्। विशेषणांशानुपादाने स्पर्शवत्त्वमात्रस्य लक्षणत्वे पृथिव्यादित्रकेऽतिव्याप्तिः। तद्वारणाय विशेषणोपादानम्। तावन्मात्रोपादाने आकाशादावतिव्याप्तिः। तद्वारणाय विशेष्योपादानम्। अतिव्याप्तिर्नाम अलक्ष्ये लक्षणसत्त्वम्। यथा गोः शृङ्गित्वं लक्षणं कृतं चेल्लक्ष्यभूतगोभिन्नमहिष्यादावतिव्याप्तिस्तत्रापि शृङ्गित्वस्य विद्यमानत्वात्। अव्याप्तिर्नाम लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम्। लक्ष्यैकदेशे लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतकाचिल्लक्ष्ये लक्षणासत्त्वमव्याप्तिरित्यर्थः। यथा गौर्नीलरूपवत्त्वं लक्षणं कृतं चेल्लक्ष्यतावच्छेदकाश्रयीभूतश्वेतगवि अव्याप्तिस्तत्र नीलरूपाभावात्। असंभवो नाम लक्ष्यमात्रे कुत्रापि लक्षणासत्त्वम्। यथा गोरेकशफवत्त्वम्। गोसामान्यस्य द्विशफवत्त्वेन एकशफवत्त्वस्य कुत्राप्यसत्त्वात्। अतिव्याप्त्यव्याप्त्यसंभवानां निष्कृष्टलक्षणानि—लक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदसामानाधिकरण्यमतिव्याप्तिः। अव्याप्तिस्तु लक्ष्यतावच्छेदकसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम्। असंभवस्तु लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम्।

(प०) रूपेति। घटादिवारणाय विशेषणम्। आकाशादिवारणाय विशेष्यम्। इन्द्रियमिति। चक्षुरादिवारणाय स्पर्शग्राहकमिति। कालादावतिव्याप्तिवारणायेन्द्रियमिति। वृक्षेति। आदिपदेन जलादिपरिग्रहः। शरीरान्तरिति। महावाय्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषणम्। मन आदि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वारणाय विशेष्यम्। धनंजयवारणाय संचारीति। उपाधीति। मुखनासिकाभ्यां निर्गमनप्रवेशनात्प्राणः, जलादेरधोनयनादपानः, भुक्तपरिणामाय जाठरानलस्य समुन्नयनात्समानः, अन्नादेरूर्ध्वनयनादुदानः, नाडीमुखेषु वितननाद्व्यानः, इति क्रियारूपोपाधिभेदात्तथा व्यवह्रियत इत्यर्थः।

(हिन्दी) रूपसे रहित और स्पर्शवाला जो है उसे वायु कहते हैं। वह दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। परमाणुरूप वायु नित्य है और कार्यरूप वायु अनित्य है। फिर वह पूर्वोक्त वायु शरीर, इन्द्रिय और विषयभेदसे तीन प्रकारका है। वायवीय शरीर वायुलोकमें प्रसिद्ध है अर्थात् वायुलोकवासियोंका शरीर वायवीय है। सारे शरीरमें रहनेवाली और स्पर्शको ग्रहण करनेवाली त्वक् (त्वचा) इन्द्रिय, वायवीय इन्द्रिय है। वृक्ष और जल आदिको कँपानेवाला वायवीय विषय है। शरीरके भीतर सञ्चरण करनेवाला वायु प्राणवायु है। यह एक होते हुए भी स्थान रूप उपाधि भेदसे प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान संज्ञाको प्राप्त होता है अर्थात् इन भेदोंसे पांच प्रकारका होता है।

शब्दगुणकमाकाशम्। तच्चैकं विभु नित्यं च।

(न्या०) आकाशं लक्षयति—शब्दगुणकमिति। गुणपदमाकाशे शब्द एव विशेषगुण इति द्योतनाय न त्वतिव्याप्तिवारणाय, समवायेन शब्दवत्त्वमात्रस्य सम्यक्त्वात्। तच्चैकमिति। अनेकत्वे मानाभावादिति भावः। विभ्विति। सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम्। मूर्तत्वं च क्रियावत्त्वम्। पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि मूर्तानि। पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशेति-पञ्चकं भूतपदवाच्यम्। भूतत्वं नाम बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वम्।

(प०) शब्देति। शब्दो गुणो यस्य तत्तथा। असंभववारणाय शब्दगुणोभयम्। विभ्विति। सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगि।

(हिन्दी) आकाश शब्द गुण वाला है और वह एक, व्यापक तथा नित्य है।

अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः स चैको विभुर्नित्यश्च।

(न्या०) कालं लक्षयति—अतीतेति। व्यवहारहेतुत्वस्य लक्षणत्वे घट इति व्यवहारहेतुभूतघटादावतिव्याप्तिः, तद्वारणाय अतीतादीति विशेषणोपादानम्।

(प०) अतीतेति। अतीत इत्यादिर्यो व्यवहारोऽतीतो भविष्यन्वर्तमान इत्यात्मकस्तस्यासाधारणहेतुः काल इत्यर्थः। नन्विदं लक्षणमाका-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शेऽतिव्याप्तं व्यवहारस्य शब्दात्मकत्वादिति चेत्। न। अत्र हेतुपदेन निमित्तहेतोर्विवक्षितत्वात्। न चैवं कण्ठताल्वाद्यभिघातेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यं, विभुत्वस्यापि निवेशात्।

(हिन्दी) अतीत (बीता हुआ) भविष्यत् (आनेवाला) और वर्तमान आदि व्यवहारके कारणको काल कहते हैं। वह एक है, व्यापक है और नित्य है।

प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक्। सा चैका नित्या विभ्वी च।

(न्या०) दिशो लक्षणमाह—प्राच्येति। उदयाचलसंनिहिता या दिक् सा प्राची। अस्ताचलसंनिहिता या दिक्सा प्रतीची। मेरोः संनिहता या दिक् सोदीची। मेरोर्व्यवहिता या दिक् साऽवाची।

(प०) प्राचीति। इयं प्राचीयमवाचीयं प्रतीचीयमुदीचीत्यादिव्यवहारासाधारणं कारणं दिगित्यर्थः। हेतुर्दिगित्युच्यमाने परमाण्वादावतिव्याप्तिः स्यात्तद्वारणाय प्राच्यादिव्यवहारहेतुरिति। आकाशादिवारणायासाधारणेत्यपि बोध्यम्।

(हिन्दी) यह पूर्व है, यह पश्चिम है, यह उत्तर है, यह दक्षिण है इस प्रकारके व्यवहारके कारणको दिक् (दिशा) कहते हैं। यह एक है, नित्य है और व्यापक है।

ज्ञानाधिकरणमात्मा। स द्विविधः। जीवात्मा परमात्मा चेति। तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव। जीवस्तु प्रतिशरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च।

(न्या०) आत्मानं निरूपयति—ज्ञानाधिकरणमिति। अधिकरणपदं समवायेन ज्ञानाश्रयत्वलाभार्थम्।

(प०) ज्ञानाधिकरणेति। भूतलादिवारणाय ज्ञानेति। कालादिवारणाय समवायेनेत्यपि देयम्। ईश्वर इति। समवायसंबन्धेन नित्यज्ञानवानीश्वरः। जीव इति। सुखादिसमवायिकारणं जीव इत्यर्थः।

(हिन्दी) ज्ञानके अधिकरण (रहनेका स्थान) को आत्मा कहते हैं। वह दो प्रकारका है, जीवात्मा और परमात्मा। उनमें ईश्वर सर्वज्ञ है और वही परमात्मा है और एक है। जीवात्मा प्रतिशरीर भिन्न है, व्यापक है और नित्य है।

सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः। तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यं च।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(न्या०) मनो निरूपयति—सुखादीति। उपलब्धिर्नाम साक्षात्कारः। तथाच सुखदुःखादिसाक्षात्कारकारणत्वे सति इन्द्रियत्वं मनसो लक्षणम्। इन्द्रियत्वमात्रोक्तौ चक्षुरादावतिव्याप्तिः, अतः सुखादिसाक्षात्कारकारणत्वविशेषणम्। विशेष्यानुपादाने आत्मन्यतिव्याप्तिः। आत्मनः सुखादिकं प्रति समवायिकारणत्वात्। अत इन्द्रियत्वरूपविशेष्योपादानम्।

(प०) सुखेति। आत्ममनःसंयोगादिवारणायेन्द्रियमिति। चक्षुरादिवारणाय सुखेति।

(हिन्दी) जिस इन्द्रियसे सुख और दुःखकी प्राप्ति होती है उसे मन कहते हैं। वह प्रति जीवात्माके साथ रहनेके कारण अनन्त है, परमाणुरूप है और नित्य है।

चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्। तच्च शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिशचित्रभेदात्सप्तविधम्। पृथिवीजलतेजोवृत्ति। तत्र पृथिव्यां सप्तविधम्। अभास्वरशुक्लं जले। भास्वरशुक्लं तेजसि।

(न्या०) रूपं लक्षयति—चक्षुरिति। चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशिष्टगुणत्वं रूपस्य लक्षणम्। विशेष्यमात्रोपादाने रसादावतिव्याप्तिः। अतश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वविशेषणम्। तावन्मात्रोपादाने रूपत्वेऽतिव्याप्तिः। यो गुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तन्निष्ठा जातिस्तदिन्द्रियग्राह्येति नियमात्तद्वारणाय विशेष्योपादानम्। चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नाम चक्षुर्भिन्नेन्द्रियाग्राह्यत्वे सति चक्षुर्ग्राह्यत्वम्। मात्रपदानुपादाने संख्यादिसामान्यगुणेऽतिव्याप्तिः, चक्षुर्ग्राह्यत्वविशिष्टगुणत्वस्य सत्त्वात्। अतस्तद्वारणाय मात्रपदम्। संख्यादेश्चक्षुर्भिन्नत्वगिन्द्रियग्राह्यत्वाच्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वं नास्ति। अतीन्द्रियगुरुत्वादावतिव्याप्तिवारणाय चक्षुर्ग्राह्येति। अत्र लक्षणे ग्राह्यत्वं नाम प्रत्यक्षविषयत्वम्। अग्राह्यत्वं नाम तदविषयत्वम्। तथाच चक्षुर्भिन्नेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयत्वे सति चक्षुर्जन्यप्रत्यक्षविषयत्वमिति फलितोऽर्थः। ननु प्रभाघटसंयोगे रूपलक्षणस्यातिव्याप्तिस्तस्य चक्षुर्मात्रग्राह्यगुणत्वादिति चेन्न, गुणपदस्य विशेषगुणपरत्वात्। न चैवं विशेषगुणत्वघटितलक्षणे संख्यादावतिव्याप्त्यभावान्मात्रपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम्, जलमात्रवृत्तिसांसिद्धिकद्रवत्वादावतिव्याप्तिवारणाय तदुपादानात्। अथवा चक्षुर्मात्रग्राह्यजातिमद्गुणत्वस्य लक्षणत्वान्न प्रभाघटसंयोगादावतिव्याप्तिः, संयोगत्वजातेश्चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वाभावात्। घटपटसंयोगस्य त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वात्तद्गतजातेरपि त्वगिन्द्रियग्राह्यत्वात्। यो गुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तन्निष्ठजातेरपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदिन्द्रियग्राह्यत्वात् । अत्र जातिघटितलक्षणे गुणत्वानुपादाने चक्षुर्मात्र-ग्राह्यजातिमति सुवर्णादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय तदुपादानम् । एवं रसादिलक्षणे विशेषणानुपादाने लक्ष्यभिन्नगुणादावतिव्याप्तिः । विशेष्यानुपादाने लक्ष्यमात्रवृत्तिरसत्वगन्धत्वादावतिव्याप्तिः । अतो विशेषणविशेष्ययोरुपादानम् ।

(प०) चक्षुरिति । रूपत्वादिवारणाय गुणपदम् । रसादिवारणाय चक्षुर्ग्राह्य इति । संख्यादिवारणाय मात्रपदम् । यद्यपि प्रभाभित्तिसंयोग-वारणाय गुणपदेन विशेषगुणस्य विवक्षणीयतया तत एव संख्यादि-वारणं संभवतीति मात्रपदं व्यर्थं, तथापि सांसिद्धिकद्रवत्ववारणाय तदा-वश्यकम् । वस्तुतस्तु परमाणुरूपेऽव्याप्तिवारणाय चक्षुर्मात्रगाह्यजाति-मत्त्वस्य विवक्षणीयतया विशेषपदं न देयम् । त्र्यणुकादिवारणाय गुणपदं तु देयम् । सतेति । रूपमित्यनुषज्यते ।

(हिन्दी) चक्षु इन्द्रियसे भिन्न इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष न होनेवाले और केवल चक्षु इन्द्रियद्वारा ही प्रत्यक्ष होनेवाले गुणको रूप कहते हैं । वह रूप शुक्ल (सफेद) नील, पीत, रक्त (लाल) हरित (हरा), कपिश (धूसर) चित्र (कई रंग) भेदसे सात प्रकारका है । पृथिवी, जल और तेजमें रहता है । पृथिवीमें सातो प्रकारका रहता है । जलमें विना चमकवाला सफेद रूप है और तेजमें चमकदार सफेद रूप है ।

रसनग्राह्यो गुणो रसः । स च मधुराम्ललवणकटुकषायतिक्त-भेदात् षड्विधः । पृथिवीजलवृत्तिः । तत्र पृथिव्यां षड्विधः । जले मधुर एव ।

(प०) रसनेति । रसत्वादिवारणाय गुण इति । रूपादावतिव्याप्ति-वारणाय रसनेति । तत्रेति । पृथिवीजलयोरित्यर्थः । षड्विध इति । अत्र रस इत्यनुवर्तते ।

(हिन्दी) रसना (जीभ) से प्रत्यक्ष होनेवाले गुणको रस कहते हैं । वह मधुर, आम्ल, (खटास) लवण, कटु, कषाय (कसैला) और तिक्त भेदसे छ प्रकारका है । पृथिवी और जलमें रहता है । पृथिवीमें छ प्रकारका है, जलमें केवल मधुर ही है ।

घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः । स द्विविधः । सुरभिरसुरभिश्च । पृथिवीमात्रवृत्तिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प०) घ्राणग्राह्य इति। गन्धत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति। रूपादावतिव्याप्तिवारणाय घ्राणग्राह्य इति। पृथिवीति। पृथिवीसंबन्धसत्त्वे गन्धप्रतीतिसत्त्वं, पृथिवीसंबन्धाभावे गन्धप्रतीत्यभाव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां पृथिवीगन्धस्यैव जले प्रतीतिर्बोध्या। एवं वायावपि। ननु देशान्तरस्थकस्तूरीकुसुमसंबद्धपवनस्यैतद्देशे तत्संबन्धाभावाद्गन्धप्रतीत्यनुपपत्तिः। नच वाय्वानीतत्र्यणुकादिसंबन्धोऽस्त्येवेति वाच्यं; कस्तूर्या न्यूनतापत्तेः, कुसुमस्य च सच्छिद्रत्वापत्तेरिति चेन्न; भोक्त्रदृष्टविशेषेण पूर्ववत्त्र्यणुकान्तराद्युत्पत्तेः। कर्पूरादौ तु तदभावान्न तथात्वमिति।

(हिन्दी) घ्राणेन्द्रियसे प्रत्यक्ष होनेवाला गुण गन्ध कहलाता है। वह दो प्रकारका है—सुगन्ध और दुर्गन्ध भेदसे। यह केवल पृथिवीमें रहता है।

त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः। स च त्रिविधः। शीतोष्णानुष्णाशीतभेदात्। पृथिव्यप्तेजोवायुवृत्तिः। तत्र शीतो जले। उष्णस्तेजसि। अनुष्णाशीतः पृथिवीवाय्वोः।

(न्या०) स्पर्शं लक्षयति—त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्य इति। अत्रापि मात्रपदं संख्यादिसामान्यगुणादावतिव्याप्तिवारणाय। अन्यविशेषणकृत्यं पूर्ववद्बोध्यम्। ग्राह्यत्वपदार्थोऽपि पूर्ववदेव प्रत्यक्षविषयत्वरूप एव बोध्यः।

(प०) स्पर्शत्वादावतिव्याप्तिवारणाय गुण इति। रूपादावतिव्याप्तिवारणाय त्वगिन्द्रियेति। संख्यादिवारणाय मात्रपदम्। तत्रेति। पृथिव्यादिचतुष्टये। शीत इति शीतस्पर्शः। उष्ण इति उष्णस्पर्शः।

(हिन्दी) त्वगिन्द्रियसे ही ग्रहण किया जानेवाला गुण स्पर्श कहलाता है। वह तीन प्रकारका है—ठंढा, गरम और कुनकुना भेदसे। पृथिवी, जल, तेज और वायुमें रहता है। उनमें—जलमें ठंढा, तेजमें गरम और पृथिवी वायुमें कुनकुना अर्थात् नतो ठंढा ही, न तो गरम ही।

रूपादिचतुष्टयं पृथिव्यां पाकजमनित्यं च। अन्यत्रापाकजं नित्यमनित्यं च। नित्यगतं नित्यम्। अनित्यगतमनित्यम्।

(न्या०) रूपादिचतुष्टयमिति। एतत्तत्त्वनिर्णयश्चेत्थम्। पाको नाम विजातीयतेजःसंयोगः। स च नानाजातीयरूपजनको विजातीयस्तेजःसंयोगः। तदपेक्षया रसजनको विजातीयः। एवं गन्धजनकोऽपि ततो विजातीय एव। एवं स्पर्शजनकोऽपि तथैव। एवंप्रकारेण भिन्नभिन्नजातीयाः पाकाः कार्यवैलक्षण्येन कल्पनीयाः। यथा तृणपुञ्जनिक्षिप्त

पाक" नाम से विजातीय तेजःसंयोग को समझना चाहिये। इस से रूपादि चार तत्त्वों का निश्चय होता है। [illegible] विजातीय तेज के संयोग से नाना प्रकार के रूप उत्पन्न होते हैं। [illegible] विजातीय हैं। [illegible] रसजनक [illegible] [illegible]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आम्रादौ ऊष्मलक्षणविजातीयतेजःसंयोगात्पूर्वहरितरूपनाशेन रूपान्तरस्य पीतादेरुत्पत्तिर्नतु रसादेरुत्पत्तिः। पूर्वरसस्याम्लास्यैवानुभवात्। क्वचित्पूर्वहरितरूपसत्त्वेऽपि रसपरावृत्तिर्दृश्यते। विजातीयतेजःसंयोगरूपपाकवशात्पूर्वतनाम्लरसनाशेन मधुररसस्यानुभवात्। तस्माद्रूपजनकापेक्षया रसजनको विलक्षण एवाङ्गीकार्यः। एवं गन्धजनको विलक्षण एव। रूपरसयोरपरावृत्तावपि पूर्वगन्धनाशेऽपि विजातीयपाकवशात्सुरभिगन्धोपलब्धेः। एवं स्पर्शजनकः, पाकवशात्कठिनस्पर्शनाशेन मृदुस्पर्शानुभवात्। तस्माद्रूपादिजनका विजातीया एव पाकाः। अत एव पार्थिवपरमाणूनामेकजातीयत्वेऽपि पाकमहिम्ना विजातीयद्रव्यान्तरानुभवः। यथा गोभुक्तृणादीनामापरमाण्वन्तभङ्गे तृणारम्भकपरमाणुषु विजातीयतेजःसंयोगात्पूर्वरूपादिचतुष्टयनाशे तदनन्तरं दुग्धे यादृशं रूपादिकं वर्तते तादृशरूपरसगन्धस्पर्शजनकास्तेजःसंयोगा जायन्ते। तदुत्तरं तादृशरूपरसादय उत्पद्यन्ते। तादृशरूपरसादिविशिष्टपरमाणुभिर्दुग्धद्व्यणुकमारभ्यते। ततस्त्र्यणुकादिक्रमेण महादुग्धारम्भः। एवं दुग्धारम्भकैः परमाणुभिरेव दध्यारभ्यते। एवं पाकमहिम्ना दध्यारम्भकैरेव परमाणुभिर्नवनीतादिकमिति दिक्।

(हिन्दी) रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये चार गुण पृथिवीमें पाकज हैं, तेजके संयोगसे उत्पन्न होते हैं और अनित्य हैं। अन्यत्र अर्थात् जल, तेज और वायुमें अपाकज हैं अर्थात् बिना पाक ही के हुआ करते हैं। और नित्य तथा अनित्य भी हैं। नित्य अर्थात् परमाणुमें रहनेवाले रूपादि नित्य हैं और अनित्य अर्थात् घटपटादिमें रहनेवाले रूपादि अनित्य हैं। (यह पाक की क्रिया केवल पृथ्वी में ही होती है अन्यत्र नहीं होती)॥

एकत्वादिव्यवहारहेतुः संख्या। सा नवद्रव्यवृत्तिः। एकत्वादिपरार्धपर्यन्ता। एकत्वं नित्यमनित्यं च। नित्यगतं नित्यम्। अनित्यगतमनित्यम्। द्वित्वादिकं तु सर्वत्रानित्यमेव।

(प०) एकत्वादीति। एकत्वमित्यादिर्यो व्यवहार एको द्वावित्याद्यात्मकस्तस्य हेतुः संख्या, इत्यर्थः। घटादिवारणाय एकत्वादीति। कालादिवारणायासाधारणेत्यपि देयम्। ननु संख्याया अवधिरस्ति न वेत्यत आह—एकत्वादीति। तथाच 'एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा। लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेवच॥ वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शङ्खः पद्मश्च सागरः। अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृद्ध्या यथाक्रमम्॥ इति महदुक्तेः परार्धपर्यन्तैव संख्या इति भावः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(हिन्दी) एक, दो आदि व्यवहारका कारण संख्या है अर्थात् जिसके द्वारा जनसाधारण एक, दो आदि व्यवहार कर पाता है उसे संख्या कहते हैं। वह पृथिवी आदि नव द्रव्योंमें रहती है और एकसे परार्द्ध तक हुआ करती है। एकत्व संख्या नित्य और अनित्य दोनों तरहकी हुआ करती है। नित्य पदार्थ—परमाणु और आकाशादि पञ्चकमें रहनेवाली एकत्व संख्या नित्य है और अनित्य पदार्थ—घट, पट, मठादिमें रहनेवाली एकत्वसंख्या अनित्य है। द्वित्व, त्रित्व, आदि संख्या तो क्या नित्य द्रव्यमें क्या अनित्य द्रव्यमें सभी जगह अनित्य है।

मानव्यवहारासाधारणं कारणं परिमाणम्। नवद्रव्यवृत्ति। तच्चतुर्विधम्। अणु महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति।

(प०) मानेति। मानं परिमितिस्तस्या यो व्यवहारः-इदं महदिदमणु इत्याद्यात्मकस्तस्य कारणं परिमाणमित्यर्थः। दण्डादिवारणाय मानेति। कालादिवारणायासाधारणेति। शब्दत्ववारणाय कारणमिति। नवद्रव्येति। चतुर्विधमपि परमध्यभेदेन द्विविधम्। तत्र परमाणुह्रस्वत्वे परमाणुमनसोः। मध्यमाणुह्रस्वत्वे द्व्यणुके। परममहत्त्वदीर्घत्वे गगनादौ। मध्यममहत्त्वदीर्घत्वे घटादौ। एतन्मौक्तिकादिदं मौक्तिकमण्विति व्यवहारस्यापकृष्टमहत्त्वाश्रयत्वाद्गौणत्वं बोध्यम्। एवमेव केतनाद्व्यजनं ह्रस्वमित्यत्रापि निकृष्टदीर्घत्वाद्गौणत्वम्।

(हिन्दी) तौलने नापने आदि व्यवहारके प्रधानकारणको परिमाण कहते हैं। वह नव द्रव्यमें रहता है। वह चार प्रकारका है, अणु (छोटा), महत् (बड़ा), दीर्घ (लम्बा) और ह्रस्व (नाटा)।

पृथग्व्यवहारासाधारणकारणं पृथक्त्वम्। सर्वद्रव्यवृत्ति।

(प०) पृथगिति। अयमस्मात्पृथगिति यो व्यवहारस्तस्य कारणं पृथक्त्वमित्यर्थः। दण्डादिवारणाय पृथगित्यादि। कालादिवारणायासाधारणेति। पृथग्व्यवहारत्ववारणाय कारणमिति।

(हिन्दी) "यह इससे अलग है" इस व्यवहारका प्रधान कारण पृथक्त्व है। वह नवों द्रव्यमें रहता है।

संयुक्तव्यवहारहेतुः संयोगः। सर्वद्रव्यवृत्तिः।

(प०) संयुक्तेति। इमौ संयुक्ताविति यो व्यवहारस्तस्य हेतुः संयोग इत्यर्थः। दण्डादिवारणाय संयुक्तव्यवहारेति। कालादिवारणाया-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साधारणेत्यपि देयम्। संयुक्तव्यवहारत्वेऽतिप्रसक्तिवारणाय हेतुरिति। उपदर्शितलक्षणचतुष्टयेऽसाधारणपदं देयम्। क्वचित्पुस्तके परिमाणपृथक्त्वलक्षणे ईश्वरेच्छादिवारणायासाधारणेति दृश्यते तत्त्वाधुनिकैर्न्यस्तमिति बोध्यम्।

(हिन्दी) "ये दोनों मिले हुए हैं" इस व्यवहारका जो कारण उसे संयोग कहते हैं। वह नवों द्रव्योंमें रहता है।

संयोगनाशको गुणो विभागः। सर्वद्रव्यवृत्तिः।

(न्या०) विभागं लक्षयति—संयोगेति। संयोगनाशकत्वविशिष्टगुणत्वं विभागस्य लक्षणम्। विशेषणमात्रोपादाने क्रियाया अपि संयोगनाशकत्वात्तत्रातिव्याप्तिस्तद्वारणाय गुणत्वमिति विशेष्योपादानम्।

(प०) संयोगेति। संयोगनाशजनक इत्यर्थः। कालेऽतिप्रसक्तिवारणाय गुणपदम्। ईश्वरेच्छादिवारणायासाधारणेत्यपि बोध्यम्। ननु असाधारणपदोपादाने गुणपदस्य वैयर्थ्यं स्यादिति चेन्न, क्रियायामतिप्रसक्तिवारणाय तस्याप्यावश्यकत्वात्।

(हिन्दी) संयोगको नाश करनेवाला जो गुण उसे विभाग कहते हैं। वह भी नवो द्रव्योंमें रहता है।

परापरव्यवहारासाधारणकारणे परत्वापरत्वे। पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिनी। ते च द्विविधे। दिक्कृते कालकृते चेति। दूरस्थे दिक्कृतं परत्वम्। समीपस्थे दिक्कृतमपरत्वम्। ज्येष्ठे कालकृतं परत्वं कनिष्ठे कालकृतमपरत्वम्।

(प०) परेति। परव्यवहारासाधारणं कारणं परत्वम्। अपरव्यवहारासाधारणं कारणमपरत्वमित्यर्थः। दण्डादिवारणाय परव्यवहारेति। कालादिवारणायासाधारणेति। परव्यवहारत्ववारणाय कारणेति। एवमेव द्वितीयेऽपि बोध्यम्।

(हिन्दी) "यह इससे पर है" और "यह इससे अपर है" इस व्यवहारके प्रधान कारणको यथाक्रम परत्व और अपरत्व कहते हैं। ये दोनों पृथिवी, जल, तेज, वायु और मनमें रहते हैं। वे परत्व और अपरत्व दो प्रकारके हैं—दिक्कृत और कालकृत। दूरस्थ पदार्थमें दिक्कृत परत्व है और समीपस्थ पदार्थमें दिक्कृत अपरत्व है। ज्येष्ठ (बड़ी अवस्थावाला) में कालकृत परत्व है और कनिष्ठ (छोटी अवस्थावाला) में कालकृत अपरत्व है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आद्य पतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् पृथिवीजलवृत्ति।

(न्या) गुरुत्वं लक्षयति—आद्येति। द्वितीयपतनक्रियायां वेगस्यासमवायिकारणत्वात्तत्रातिव्याप्तिवारणायाद्येति। उत्तरत्र स्यन्दने आद्यविशेषणमपि पूर्ववदेव योजनीयम्।

(प०) आद्येति। दण्डादिवारणायासमवायीति। रूपादिवारणाय पतनेति। वेगेऽतिव्याप्तिवारणायाद्येति।

(हिन्दी) प्रथम पतनका जो असमवायि कारण उसे गुरुत्व कहते हैं। वह पृथिवी और जलमें रहता है।

आद्यस्यन्दनासमवायिकारणं द्रवत्वम्। पृथिव्यप्तेजो वृत्ति। तद्द्विविधम्। सांसिद्धिकं नैमित्तिकं च। सांसिद्धिकं जले, नैमित्तिकं पृथिवीतेजसोः। पृथिव्यां घृतादावग्निसंयोगजं द्रवत्वम्। तेजसि सुवर्णादौ।

(प०) आद्यस्यन्दनेति। दण्डादिवारणायासमवायीति। रसादिवारणाय स्यन्दनेति।

(हिन्दी) प्रथम स्यन्दन (बहना) का जो असमवायिकारण उसे द्रवत्व कहते हैं। वह पृथिवी, जल और तेजमें रहता है। वह दो प्रकारका है—सांसिद्धिक अर्थात् स्वाभाविक और नैमित्तिक अर्थात् तेज आदि संयोगसे होनेवाला। जलमें द्रवत्व (पिघलना) स्वाभाविक है और पृथिवी (घृत) तथा तेज (सुवर्ण आदि) में द्रवत्व (पिघलना) अग्निसंयोगरूप निमित्त जन्य है इसलिये पृथिवी और तेजमें द्रवत्व नैमित्तिक है।

चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः। जलमात्रवृत्तिः।

(न्या०) स्नेहं लक्षयति—चूर्णादीति। चूर्णादिपिण्डीभावहेतुत्वे सति गुणत्वं स्नेहस्य लक्षणम्। पिण्डीभावो नाम चूर्णादेर्धारणाकर्षणहेतुभूतो विलक्षणः संयोगः। तादृशसंयोगे स्नेहस्यैवासाधारणकारणत्वं न तु जलादिगतद्रवत्वस्य। तथा सति द्रुतसुवर्णादिसंयोगेन चूर्णादेः पिण्डीभावापत्तेः। अतः स्नेह एवासाधारणं कारणम्। विशेषणमात्रोपादाने कालादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय विशेष्योपादानम्। वस्तुतस्तु द्रुतजलसंयोगस्यैव पिण्डीभावहेतुत्वं, स्नेहस्य पिण्डीभावहेतुत्वे मानाभावात्। जले द्रुतत्वविशेषगात्करकादिव्यावृत्तिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प०) चूर्णादीति। चूर्णं पिष्टं तदेवादिर्यस्य मृत्तिकादेः स चूर्णादिस्तस्य पिण्डीभावः संयोगविशेषस्तस्य हेतुर्निमित्तकारणं स्नेह इत्यर्थः। कालादावतिव्याप्तिवारणाय गुणपदम्। रूपादावतिव्याप्तिवारणाय पिण्डीभावेति। चूर्णपदं स्पष्टार्थम्।

(हिन्दी) चूर्ण (आंटा आदि पिसी हुई वस्तु) के पिण्ड बंधने आदिका कारणीभूत जो गुण उसे स्नेह कहते हैं—चूर्ण=आंटा इसका पिण्डीभाव=जलदेने पर लोंदा बन जाना इसमें कारण जलमें रहनेवाला स्नेह गुण है यह स्नेह (चिकनाहट) गुण ही आंटेके हरएक अवयवोंको एक साथ मिलाकर उसके पिण्ड बनानेमें कारण होता है। यह स्नेह गुण केवल जलमें ही रहता है।

श्रोत्रग्राह्यो गुणः शब्दः। आकाशमात्रवृत्तिः। स द्विविधः। ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च। तत्र ध्वन्यात्मको भेर्यादौ। वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः।

(न्या०) शब्दं लक्षयति—श्रोत्रेति। शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति। रूपादावतिव्याप्तिवारणाय श्रोत्रेति। स त्रिविधः संयोगजो विभागजः शब्दजश्चेति। यथा भेरीदण्डसंयोगजो भांकारादिशब्दः, हस्ताभिघातसंयोगजन्यो मृदङ्गादिशब्दः। वंशे पाट्यमाने दलद्वयविभागजश्चटचटाशब्दः। शब्दोत्पत्तिदेशमारभ्य श्रोत्रदेशपर्यन्तं वीचीतरङ्गन्यायेन कदम्बमुकुलन्यायेन वा निमित्तपवनेन शब्दधारा जायन्ते। तत्र उत्तरोत्तरशब्दे पूर्वपूर्वशब्दः कारणम्।

(प०) श्रोत्रेति। शब्दत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय गुण इति। रूपादिवारणाय श्रोत्रग्राह्य इति। वस्तुतस्तु श्रोत्रोत्पन्नशब्दस्यैव श्रोत्रग्राह्यत्वेन तद्भिन्नेऽव्याप्तिवारणाय श्रोत्रग्राह्यजातिमत्त्वे तात्पर्याद् गुणपदमनुपादेयमेव।

(हिन्दी) कर्णेन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष होनेवाले गुणको शब्द कहते हैं। वह केवल आकाशमें रहता है। वह दो प्रकारका है—ध्वन्यात्मक—ध्वनिसे उत्पन्न, और वर्णात्मक—वर्णसे उत्पन्न। उनमें (नगाड़ा) आदि बाजाओंसे जो शब्द उत्पन्न होता है उसे ध्वन्यात्मक शब्द कहते हैं और कण्ठसे संस्कृतभाषा आदि रूप जो शब्द उत्पन्न होते हैं उसे वर्णात्मक शब्द कहते हैं।

सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धिर्ज्ञानम्। सा द्विविधा। स्मृतिरनुभवश्च।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(न्या०) बुद्धेर्लक्षणमाह—सर्वव्यवहारेति। व्यवहारः शब्दप्रयोगः। ज्ञानं विना शब्दप्रयोगासंभवाच्छब्दप्रयोगरूपव्यवहारहेतुत्वं ज्ञानस्य लक्षणम्। बुद्धिं विभजते—सा द्विविधेति।

(प०) बुद्धिलक्षणमाह—सर्वेति। सर्वे ये व्यवहारा आहारविहारादयस्तेषां हेतुर्बुद्धिरित्यर्थः। दण्डादिवारणाय सर्वव्यवहारेति। कालादिवारणायासाधारणेत्यपि देयम्।

(हिन्दी) संसारके समस्त व्यवहारका कारणीभूत जो गुण उसे बुद्धि अथवा ज्ञान कहते हैं। वह बुद्धि दो प्रकार की है—स्मृति और अनुभव।

संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः।

(न्या०) स्मृतिं लक्षयति—संस्कारेति। संस्कारजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वं स्मृतेर्लक्षणम्। विशेषणानुपादाने प्रत्यक्षानुभवेऽतिव्याप्तिस्तद्वारणाय विशेषणोपादानम्। संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्योपादानम्, ध्वंसं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वात् संस्कारध्वंसेऽपि संस्कारजन्यत्वस्य सत्त्वात्। प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय मात्रपदम्।

(प०) संस्कारेति। संस्कारध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति। अनुभवेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारजन्यमिति। तथापि प्रत्यभिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय संस्कारमात्रजन्यत्वं विवक्षणीयम्। क्वचित्तथैव पाठः। न चैवं सत्यसंभवस्तस्य संस्कारजन्यत्वे सतीन्द्रियार्थसंनिकर्षाजन्यार्थकत्वात्।

(हिन्दी) स्मृति उसको कहते हैं जो ज्ञान केवल संस्कारसे उत्पन्न होता है।

तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः। स द्विविधः। यथार्थोऽयथार्थश्च।

(न्या०) अनुभवं लक्षयति—तद्भिन्नमिति। तद्भिन्नत्वं नाम स्मृतिभिन्नत्वम्। स्मृतिभिन्नत्वविशिष्टज्ञानत्वमनुभवस्य लक्षणम्। तत्र विशेषणानुपादाने स्मृतावतिव्याप्तिः, विशेष्यानुपादाने घटादावतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय विशेषणविशेष्ययोरुभयोरुपादानम्। अनुभवं विभजते—स द्विविध इति।

(प०) तदिति। स्मृतित्वावच्छिन्नभिन्नमित्यर्थः। तेन यत्किंचित्स्मृतिभिन्नत्वस्य स्मृतौ सत्त्वेऽपि न क्षतिः। घटादावतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानमिति। स्मृतिवारणाय तद्भिन्नमिति।

(हिन्दी) उससे भिन्न (संस्कारसे उत्पन्न न होनेवाले) ज्ञानको अनुभव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं। वह दो प्रकारका है—यथार्थ (वास्तविक) और अयथार्थ (अवास्तविक)।

तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः । सैव प्रमेत्युच्यते ।

(न्या०) यथार्थानुभवं लक्षयति—तद्वतीति। तद्वतीत्यत्र सप्तम्यर्थो विशेष्यत्वम्। तच्छब्देन प्रकारीभूतो धर्मो धर्तव्यः। तथा च तद्वद्विशेष्यकत्वे सति तत्प्रकारकानुभवत्वं यथार्थानुभवस्य लक्षणम्। उदाहरणम्—रजते 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम्। अत्र रजतत्ववद्विशेष्यकत्वे सति रजतत्वप्रकारकत्वस्य सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः, तद्वन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालित्वमिति तु निष्कर्षः। अन्यथा यथाश्रुते रङ्गरजतयोरिमे रजतरङ्गे इत्याकारकसमूहालम्बनभ्रमेऽतिव्याप्तिः, तत्रापि रजतत्ववद्विशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयो रङ्गत्ववद्विशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रकारकत्वयोः सत्त्वात्। उक्तनिष्कर्षे तु नातिव्याप्तिः, रजतत्वप्रकारताया रजतत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्, एवं रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्। किंतु समूहालम्बनभ्रमस्य रङ्गांशे रजतत्वावगाहित्वेन रजतत्वप्रकारताया रङ्गत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वात्। एवं रजतांशे रङ्गत्वावगाहित्वेन रङ्गत्वप्रकारताया रजतत्ववद्विशेष्यतानिरूपितत्वाच्चेति। नानामुख्यविशेष्यताशालि ज्ञानं समूहालम्बनम्।

(प०) तद्वतीति। तद्वति तत्प्रकारो यस्य स तथेत्यर्थः। तद्वद्विशेष्यकतत्प्रकारक इति यावत्। स्मृतिवारणायानुभव इति। अयथार्थानुभववारणाय तद्वतीति। निर्विकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय तत्प्रकारक इति।

(हिन्दी) जो विषय जैसा है उसमें उसी प्रकार का ज्ञान होना यथार्थ अनुभव कहा जाता है। जैसे चांदीमें चांदीका ज्ञान। इसीको "प्रमा" भी कहते हैं।

तदभाववति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः ।

(न्या०) अयथार्थानुभवं लक्षयति—तदभाववतीति। अत्रापि पूर्ववत्तदभाववन्निष्ठविशेष्यतानिरूपिततन्निष्ठप्रकारताशालिज्ञानत्वं विवक्षणीयम्। अन्यथा रङ्गरजतयोरिमे रङ्गरजते इत्याकारकसमूहालम्बनप्रमायामतिव्याप्तिः। एतत्समूहालम्बनस्य रङ्गरजतोभयविशेष्यकत्वेन रजतत्वरङ्गत्वोभयप्रकारकत्वेन च रजतत्वाभाववद्रङ्गविशेष्यकत्वरजतत्वप्रकारकत्वयोः, रङ्गत्वाभाववद्रजतविशेष्यकत्वरङ्गत्वप्रकारकत्वयोश्च सत्त्वात्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निष्कर्षे तु रजतांशे रजतत्वावगाहित्वेन रङ्गांशे रङ्गत्वावगाहित्वेन च रजतत्वप्रकारताया रजतत्वाभाववद्रङ्गविशेष्यतानिरूपितत्वाभावात्। एवं रङ्गत्वप्रकारताया रङ्गत्वाभाववद्रजतविशेष्यतानिरूपितत्वाभावान्नाति-व्याप्तिः। उदाहरणम्—यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति।

(प०) तदभावेति। तदभाववद्विशेष्यकतत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्था-नुभव इत्यर्थः। यथा शुक्तौ 'इदं रजतम्' इति ज्ञानम्। स्मृतिवारणायानु-भव इति। यथार्थानुभवेऽतिव्याप्तिनिरसनाय तदभाववतीति। निर्वि-कल्पकवारणाय तत्प्रकारक इति।

(हिन्दी) और इसी तरह जो विषय जैसा है, उसमें उसके विपरीत विषयका ज्ञान होना अयथार्थ ज्ञान है। जैसे अन्धेरेमें जमीन पर पड़ी हुई डोरीमें सर्पका ज्ञान। इसीको अप्रमा भी कहते हैं।

यथार्थानुभवश्चतुर्विधः। प्रत्यक्षानुमित्युपमितिशाब्दभेदात्।

(न्या०) यथार्थानुभवं विभजते—चतुर्विध इति।

(प०) यथार्थेति। यथार्थानुभवः प्रत्यक्षमेवेति चार्वाकाः। अनु-मितिरपीति काणादबौद्धाः। उपमितिरपीति नैयायिकैकदेशिनः। शाब्द-मपीति नैयायिकाः। अर्थापत्तिरपीति प्राभाकराः। आनुपलब्धिकोऽपीति भाट्टवेदान्तिनौ। सांभविकैतिह्यकावपीति पौराणिकाः। चैष्टिकोऽपीति तान्त्रिकाः। एतेषां मतेऽस्वरसं संभाव्य तस्य चातुर्विध्यं स्वयं दर्शितम्।

(हिन्दी) यथार्थानुभव चार प्रकारका है—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्द।

तत्करणमपि चतुर्विधं प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्।

(न्या०) तत्करणमिति। फलीभूतप्रत्यक्षादिकरणं चतुर्विधमित्यर्थः। प्रत्यक्षादिचतुर्विधप्रमाणानां प्रमाकरणत्वं सामान्यलक्षणम्। एकैकप्रमाण-लक्षणं तु वक्ष्यते प्रत्यक्षज्ञानेत्यादिना।

(प०) तदिति। यथार्थानुभवात्मकप्रमायाः करणमित्यर्थः।

(हिन्दी) इनके करण (कारण) भी चार प्रकारके होते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।

असाधारणं कारणं करणम्।

(न्या०) करणलक्षणमाह—असाधारणमिति। व्यापारवदसाधारणं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारणं करणमित्यर्थः । असाधारणत्वं च कार्यत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्न-कार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् । यथा दण्डादेर्घटादिकं प्रत्यसाधारण-कारणत्वम् । कार्यत्वातिरिक्तो घटत्वादिरूपो धर्मः, तदवच्छिन्नकार्यता घटे, तन्निरूपितकारणता दण्डे । अतो घटं प्रति दण्डः असाधारणं कारणम् । भ्रम्यादिरूपव्यापारवत्त्वाच्च करणम् । साधारणत्वं च कार्यत्वा-वच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताशालित्वम् । ईश्वरादृष्टादेः कार्यत्वावच्छिन्नं प्रत्येव कारणत्वात्साधारणकारणत्वम् ।

(प०) असाधारणमिति । कालादिवारणायासाधारणमिति । व्यापारे-ऽतिव्याप्तिवारणाय व्यापारवदित्यपि देयम् । व्यापारश्च द्रव्यान्यत्वे सति तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकः । ईश्वरेच्छादिवारणाय तज्जन्यत्वे सतीति । कुलालजन्यत्वे सति कुलालजन्यघटजनकत्वं कुलालपुत्रस्याप्यस्त्यतस्तत्रातिव्याप्तिवारणाय प्रथमं सत्यन्तम् । दण्डरूपादिवारणाय तज्जन्यजनक इति ।

(हिन्दी) असाधारण कारण को करण कहते हैं ।

कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम् ।

(न्या०) कारणं लक्षयति—कार्यनियतेति । कार्यं प्रति नियतत्वे सति पूर्ववृत्तित्वम् । नियतत्वविशेषणानुपादाने पूर्ववर्तिनो रासभादेरपि घटादिकारणत्वं स्यादतो नियतत्वे सतीति विशेषणम् । नियतपूर्ववर्तिनो दण्डरूपादेरपि घटकारणत्वं स्यादतोऽनन्यथासिद्धपदमपि कारणलक्षणे निवेशनीयम् । एवञ्च न तत्रातिव्याप्तिः, दण्डरूपादीनां त्वन्यथासिद्धत्वात् ।

(प०) कार्येति । कार्यानियतावश्यंभाविनी पूर्ववृत्तिः पूर्वक्षणवृत्ति-र्यस्य तत्तथेत्यर्थः । अनियतरासभादिवारणाय नियतेति । कार्यवारणाय पूर्वेति । दण्डत्वादिवारणायानन्यथासिद्धत्वविशेषणस्यावश्यकत्वेन तत एव रासभादिवारणसंभवे नियतपदमनर्थकमेव । एवञ्चानन्यथासिद्ध-कार्यपूर्ववृत्ति कारणमिति फलितम् । अनन्यथासिद्धत्वमन्यथासिद्धि-शून्यत्वम् । अन्यथासिद्धिश्चावश्यकल्पनियतपूर्ववर्तिनैव कार्यसंभवे तत्सहभूतत्वम् । यथावश्यकल्पनियतपूर्ववर्तिभिर्दण्डादिभिरेव घटरूप-कार्यसंभवे तत्सहभूतत्वं दण्डत्वादौ तदन्यथासिद्धम् ।

(हिन्दी) नियम पूर्वक कार्यकी उत्पत्तिके पहले जो रहे उसे कारण कहते हैं ।

कार्यं प्रागभावप्रतियोगि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(न्या०) कार्यं लक्षयति—कार्यमिति। प्रागभावप्रतियोगित्वं कार्यस्य लक्षणम्। कार्योत्पत्तेः पूर्वम् 'इह घटो भविष्यति' इति प्रतीतिर्जायते एतत्प्रतीतिविषयीभूतो योऽभावः स प्रागभावः तत्प्रतियोगि घटादिरूपं कार्यम्।

(प०) प्रागभावेति। कालादिवारणाय प्रागिति। असंभववारणाय प्रतियोगीति।

(हिन्दी) प्राक् (पहले) अभाव अर्थात् उत्पन्न होनेवाली वस्तुका उत्पत्तिके पहले जो अभाव उसे प्रागभाव कहते हैं—इसका जो प्रतियोगी उसे कार्य कहते हैं।

कारणं त्रिविधं समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात्।

(न्या०) कारणं विभजते—कारणमिति। समवायिकारणमसमवायिकारणं निमित्तकारणं चेति।

(हिन्दी) कारण तीन प्रकारका है—समवायिकारण, असमवायिकारण और निमित्तकारण।

यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्। यथा तन्तवः पटस्य। पटश्च स्वगतरूपादेः।

(न्या०) समवायिकारणं लक्षयति—यत्समवेतमिति। यस्मिन्समवेतं सत्समवायेन संबद्धं सत् कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणमित्यर्थः। उदाहरणम्—यथा तन्तव इति। तन्तुषु समवायेन संबद्धं सत्पटात्मकं कार्यमुत्पद्यते तत् तन्तवः समवायिकारणमित्यर्थः। सामान्यलक्षणं तु—समवायसंबन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नकारणत्वं समवायिकारणत्वमिति। समवायसंबन्धेन घटाधिकरणे कपालादौ कपालादेः तादात्म्यसंबन्धेनैव सत्त्वात्, समवायसंबन्धावच्छिन्न-घटत्वावच्छिन्न-कार्यतानिरूपिततादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नकारणतायाः कपालादौ सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। समवायेन जन्यभावत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसंबन्धेन द्रव्यस्यैव कारणत्वाज्जन्यभावेषु द्रव्यगुणकर्मसु त्रिषु द्रव्यमेव समवायिकारणम्। द्रव्ये तु द्रव्यावयवाः समवायिकारणम्। अतो गुणादावपि द्रव्यमेव समवायिकारणमित्याशयेनाह—पटश्च स्वगतरूपादेरिति। समवायिकारणमित्यनुषज्यते।

(प०) यदिति। यस्मिन्समवायसंबन्धेन वर्तमानं तदित्यर्थः। चक्रादिवारणाय समवेतमिति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(हिन्दी) जिसमें समवाय सम्बन्धसे रहता हुआ कार्य उत्पन्न हो वह उसका समवायिकारण है, जैसे—तन्तु पटका और पट अपनेमें रहनेवाले रूपादिका ।

कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् कारणमसमवायिकारणम् । यथा तन्तुसंयोगः पटस्य । तन्तुरूपं पटरूपस्य ।

(न्या०) असमवायिकारणं लक्षयति—कार्येणेति । कार्येण सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् यत् कारणं तत् असमवायिकारणमित्यन्वयः । कारणेन सहैकस्मिन्नर्थे समवेतं सत् यत् कारणं तदसमवायिकारणमित्यन्वयः । अत्र कारणेनेत्यस्य स्वकार्यसमवायिकारणेनेत्यर्थः । जन्यद्रव्यमात्रे अवयवसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वात्पटात्मककार्ये तदवयवतन्तुसंयोगस्यैवासमवायिकारणत्वमिति दर्शयति—यथा तन्तुसंयोगः पटस्येति । पटात्मककार्येण सहैकस्मिन्नर्थे तन्तौ समवेतं सत्समवायसंबन्धेन वर्तमानं सत्पटात्मककार्यं प्रति तन्तुसंयोगात्मकं कारणमसमवायिकारणमित्यर्थः । द्वितीयमसमवायिकारणं कारणेन सहेत्यादिना पूर्वोक्तं तदुदाहरति—तन्तुरूपमिति । कारणेन सह पटरूपसमवायिकारणीभूतपटेन सह एकस्मिन्नर्थे तन्तुरूपेऽर्थे समवेतं सत्समवायसंबन्धेन वर्तमानं सत् तन्तुरूपं पटगतरूपं प्रति कारणं भवति, अतोऽसमवायिकारणं तन्तुरूपं पटगतरूपस्य । सामान्यलक्षणं तु समवायसंबन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता या समवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसंबन्धावच्छिन्ना कारणता तदाश्रयत्वमसमवायिकारणत्वमिति । द्रव्यासमवायिकारणीभूतावयवसंयोगादौ तु समवायसंबन्धावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता समवायसंबन्धावच्छिन्ना कपालद्वयसंयोगनिष्ठा कारणता कपालद्वयसंयोगे वर्तते । एवमाद्यपतनक्रियायामाद्यस्यन्दनक्रियायां च गुरुत्वद्रवत्वे असमवायिकारणे भवतः । आद्यपतनक्रियां प्रति आद्यस्यन्दनक्रियां प्रति च समवायसंबन्धेनैव तयोः कारणत्वात् । अवयविगुणादौ त्ववयवगुणादेः स्वसमवायिसमवेतत्वसंबन्धेनैव कारणत्वात्, तत्संबन्धावच्छिन्नकारणताश्रयत्वमवयवगुणादौ वर्तते । अवयवगुणकपालतन्तुरूपादेः स्वशब्दग्राह्यकपालरूपतन्तुरूपसमवायिकपालतन्तुसमवेतत्वसंबन्धेन घटपटादौ सत्त्वात् ।

(प०) कार्येणेति । कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति आत्मविशेषगुणभिन्नत्वे सति यत् कारणं तदसमवायिकारणम् । तन्तुसंयोगादावव्याप्तिवारणाय कार्येणेति । तन्तुरूपादावव्याप्तिवारणाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारणेनेति । आत्मविशेषगुणेऽतिव्याप्तिवारणायात्मविशेषगुणभिन्नत्वे सतीति। विशेषवारणाय कारणमिति।

(हिन्दी) कार्य अथवा कारणके साथ एक ही अर्थमें समवाय सम्बन्धसे रह कर जो कारण रहे वह उस कार्यके प्रति असमवायिकारण होता है। जैसे—कार्य पक्षमें—तन्तु संयोग पटका और कारण पक्षमें—तन्तुरूप पटरूपका असमवायि कारण है।

तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम्। यथा तुरीवेमादिकं पटस्य।

(न्या०) निमित्तकारणं लक्षयति—तदुभयभिन्नमिति । समवायिकारणभिन्नत्वे सति असमवायिकारणभिन्नत्वे सति कारणत्वं निमित्तकारणत्वमित्यर्थः।

(प०) तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणमिति । समवाय्यसमवायिकारणवारणाय तदुभयभिन्नमिति । विशेषादावतिव्याप्तिवारणाय कारणमिति।

(हिन्दी) उन दोनों (समवायिकारण और असमवायिकारण) से भिन्न जो कारण उसे निमित्तकारण कहते हैं। जैसे—कपड़ा बुननेके यन्त्रमें तुरी और वेमा आदि।

तदेतत्त्रिविधकारणमध्ये यदसाधारणं कारणं तदेव करणम्।

(न्या०) तदेतदिति । यदसाधारणमिति । व्यापारवत्त्वे सतीत्यपि पूरणीयम्। अन्यथा तन्तुकपालसंयोगयोरतिव्याप्तिः। तन्तुकपालसंयोगयोरपि कार्यत्वातिरिक्तपटत्वघटत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वादसाधारणत्वमस्त्येवेत्यतस्तत्र करणत्ववारणाय व्यापारवत्त्वे सतीति करणलक्षणे विशेषणं देयम्। व्यापारत्वं च तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम्। भवति हि दण्डजन्यत्वे सति दण्डजन्यघटजनकत्वाद्भ्रम्यादेर्दण्डव्यापारत्वम्। एवं कपालसंयोगतन्तुसंयोगादेरपि कपालतन्तुव्यापारत्वं, कपालतन्तुजन्यत्वे सति कपालतन्तुजन्यघटपटजनकत्वात्। करणलक्षणेऽसाधारणत्वविशेषणानुपादाने ईश्वरादृष्टादेरपि व्यापारवत्कारणत्वस्य सत्त्वात्, तत्रातिव्याप्तिवारणायासाधारणेति विशेषणम्।

(प०) तदेतदिति । यस्मात्कारणात्करणत्वघटकं कारणमुपदर्शितं तस्मादेतत्त्रिविधसाधकमध्ये यत्साधकतमं तदेव करणमिति भावः। इति करणप्रपञ्चः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(हिन्दी) इसलिये इन तीनो कारणोंमें जो असाधारण कारण वही करण कहलाता है ।

तत्र प्रत्यक्षज्ञानकरणं प्रत्यक्षम् ।

(न्या०) षड्विधेन्द्रियभूतप्रत्यक्षप्रमाणस्य लक्षणमाह—तत्रेति । प्रमाभूतेषु प्रत्यक्षात्मकं यज्ज्ञानं चाक्षुषादिप्रत्यक्षं तत्प्रति व्यापारवदसाधारणं कारणमिन्द्रियं भवति । अतः प्रत्यक्षज्ञानकरणत्वं प्रत्यक्षस्य लक्षणम् । आद्यसंनिकर्षातिरिक्तचतुर्विधसंनिकर्षाणां समवायरूपत्वेनेन्द्रियजन्यत्वाभावाद्व्यापारत्वं न संभवतीति इन्द्रियमनःसंयोगस्यैव बाह्यप्रत्यक्षे जननीये इन्द्रियव्यापारता बोध्या । मानसप्रत्यक्षे त्वात्ममनःसंयोगस्यैव सा बोध्या ।

(प०) तत्रेति । प्रमाणचतुष्टयमध्ये । दण्डादिवारणाय ज्ञानेति । अनुमानादिवारणाय प्रत्यक्षेति ।

(हिन्दी) प्रत्यक्ष ज्ञानका जो असाधारण कारण उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं ।

[ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्] इन्द्रियार्थसंनिकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । तद्द्विविधम् । निर्विकल्पकं सविकल्पकं चेति ।

(न्या०) प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणमुक्त्वा प्रत्यक्षप्रमालक्षणमाह—[ज्ञानाकरणकमिति । क्षेपकं लक्षणमिदम् । ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं सादृश्यज्ञानं पदज्ञानं च करणं येषां ते ज्ञानकरणका अनुमित्युपमितिशाब्दाः । ज्ञानकरणकं न भवतीति ज्ञानाकरणकम् । तत्त्वं प्रत्यक्षलक्षणम् । इदं लक्षणमीश्वरप्रत्यक्षसाधारणम् । ईश्वरप्रत्यक्षस्याजन्यत्वात्, जन्यप्रत्यक्षे च इन्द्रियाणामेव करणत्वं न तु ज्ञानस्येति तयोरुभयोः संग्रहः ।] इन्द्रियार्थसंनिकर्षेति । जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्ष्यत्वमित्यभिप्रायेणेदं लक्षणम् । प्रत्यक्षं विभजते—निर्विकल्पकमिति ।

(प०) इन्द्रियार्थेति । इन्द्रियं चक्षुरादिकमर्थो घटादिस्तयोः संनिकर्षः संयोगादिस्तज्जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षमित्यर्थः । संनिकर्षध्वंसवारणाय ज्ञानमिति । अनुमित्यादिवारणायेन्द्रियार्थसंनिकर्षेति । ननु सोपनेत्रचक्षुषा कथं पदार्थग्रहणं चक्षुष उपनेत्रनिरुद्धत्वेन पदार्थेन सह संनिकर्षाभावात् । कथं वा स्वच्छजाह्नवीसलिलावृतमत्स्यादेश्चक्षुषा ग्रहणमिति चेन्न,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वच्छद्रव्यस्य तेजोनिरोधकत्वाभावेन तदन्तश्चक्षुःप्रवेशसंभवात्। न चेश्वरप्रत्यक्षेऽव्याप्तिरिति वाच्यम, अत्र जन्यप्रत्यक्षस्यैव लक्षितत्वात्।

(हिन्दी) (जिसमें ज्ञान कारण न हो ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है।) इन्द्रिय (चक्षु आदि) और अर्थ (घट पटादि) के सन्निकर्ष (सम्बन्ध) से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। वह दो प्रकारका है—निर्विकल्पक और सविकल्पक।

प्रत्यक्ष ज्ञान के दो प्रकार

तत्र निष्प्रकारकं ज्ञानं निर्विकल्पकम्।

(न्या०) तल्लक्षयति—तत्र निष्प्रकारकमिति। प्रकारताशून्यज्ञानत्वमेव निर्विकल्पकत्वमित्यर्थः। निर्विकल्पके चतुर्थी विषयता स्वीक्रियते, न तु त्रिविधविषयतामध्ये कापि तत्रास्ति। अतो विशेष्यताशून्यज्ञानत्वं संसर्गताशून्यज्ञानत्वमित्यपि लक्षणं संभवति।

(प०) तत्र निष्प्रकारकमिति। सविकल्पकेऽतिव्याप्तिवारणाय निष्प्रकारकमिति। प्रकारवारणाय ज्ञानमिति।

(हिन्दी) जिसमें निष्प्रकारक अर्थात् विशेष्य, विशेषण और उसके सम्बन्ध का ज्ञान न हो उसे निर्विकल्पक कहते हैं।

सप्रकारकं ज्ञानं सविकल्पकम्—यथा डित्थोऽयं ब्राह्मणोऽयं श्यामोऽयमिति।

(न्या०) सविकल्पकं लक्षयति—सप्रकारकमिति। विषयताया ज्ञाननिरूपितत्वाज्ज्ञानस्य विषयतानिरूपकत्वेन प्रकारतानिरूपकज्ञानत्वं सविकल्पकस्य लक्षणम्। एवं विशेष्यतानिरूपकज्ञानत्वं संसर्गतानिरूपकज्ञानत्वमित्यपि लक्षणं संभवति। उदाहरणम्—यथेति। इदन्त्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितडित्थत्वप्रकारताशालिज्ञानं ब्राह्मणत्वप्रकारताशालिज्ञानं च सविकल्पकमित्यर्थः।

(प०) सप्रकारकमिति। घटादिवारणाय ज्ञानमिति। निर्विकल्पकवारणाय सप्रकारकमिति।

(हिन्दी) जिसमें विशेष, विशेषण और उसके सम्बन्धका ज्ञान होता हो वह सप्रकारक (सविकल्पक) ज्ञान है, जैसे—यह डित्थ (लकड़ीका हाथी) है, यह ब्राह्मण है, यह श्याम है इत्यादि।

प्रत्यक्षज्ञानहेतुरिन्द्रियार्थसंनिकर्षः षड्विधः। संयोगः, संयुक्त-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समवायः, संयुक्तसमवेतसमवायः, समवायः, समवेतसमवायो विशेषणविशेष्यभावश्चेति ।

(न्या०) चाक्षुषादिषड्विधप्रत्यक्षकारणीभूतान् षड्विधसंनिकर्षान्विभजते—संयोग इत्यादिना । द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयोगः कारणम् । द्रव्यसमवेतवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवायस्य हेतुत्वम् द्रव्यसमवेतसमवेतवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुत्वम् । द्रव्यग्राहकाणीन्द्रियाणि चक्षुस्त्वङ्मनांसि त्रीण्येव । अन्यानि घ्राणरसनश्रवणानि गुणग्राहकाणि । अतस्त्वगिन्द्रियस्थले द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासंबन्धेन त्वाचप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नंप्रति त्वक्संयोगस्य हेतुता । एवं द्रव्यसमवेतत्वाचप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्तसमवायस्य हेतुता । द्रव्यसमवेतसमवेतोष्णत्वशीतत्वादिजातिस्पार्शनप्रत्यक्षे त्वक्संयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता । एवमात्ममानसप्रत्यक्षे मनःसंयोगस्य हेतुता । आत्मसमवेतसुखादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवायस्य हेतुता । आत्मसमवेतसमवेतसुखत्वादिमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवेतसमवायस्य हेतुता । रसनघ्राणयोस्तु रसगन्धतद्जातिग्राहकत्वेन द्वितीयतृतीययोः संनिकर्षयोरेव तत्र हेतुता वाच्या । श्रवणेन्द्रियस्याकाशरूपत्वेन शब्दस्याकाशगुणत्वेन श्रवणेन्द्रियेण च समं शब्दस्य समवायः संनिकर्षः । शब्दवृत्तिशब्दत्वकत्वखत्वादिजातिविषयकश्रावणप्रत्यक्षे समवेतसमवायस्य हेतुता । अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावो नाम विशेषणतासंनिकर्षः । पञ्चविधसंनिकर्षोपरि विशेषणता योजनीया । तथाहि—द्रव्याधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तविशेषणता । द्रव्यसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तसमवेतविशेषणता । द्रव्यसमवेतसमवेताधिकरणकाभावप्रत्यक्षे इन्द्रियसंयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणता । संयोगस्थाने संयुक्तपदं घटयित्वा समवायस्थाने समवेतपदं घटयित्वा अभावप्रत्यक्षस्थले निर्वाह्यम् । यथा घटद्रव्यसमवेतं घटत्वं पृथ्वीत्वादिकं रूपादिकं च । तत्र नीलादौ पीतत्वाभावः, घटत्वादिजातौ पटत्वाभावश्च वर्तते स चाभावः संयुक्तसमवेतविशेषणतासंनिकर्षेण गृह्यते । एवं नीलत्वादिजातौ पीतत्वाभावोऽपीन्द्रियसंयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणतासंनिकर्षेण गृह्यते घटसमवेतं नीलं तत्समवेतं नीलत्वं तद्विशेषणता पीतत्वाभावे वर्तत इति संक्षेपः । इति प्रत्यक्षपरिच्छेदः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प०) प्रत्यक्षेति। तच्च प्रत्यक्षं षड्विधं घ्राणजरासनचाक्षुषश्रौत्रत्वाचमानसभेदात्। ननु प्रत्यक्षकारणीभूतेन्द्रियनिष्ठप्रत्यक्षसामानाधिकरण्यघटकः संनिकर्षः क इत्यपेक्षायां तं विभज्य दर्शयति—प्रत्यक्षेति। लौकिकप्रत्यक्षेत्यर्थः।

(हिन्दी) चक्षु आदि इन्द्रिय और घटपटादि अर्थ (विषय) का सन्निकर्ष (सम्बन्ध) प्रत्यक्ष ज्ञानका कारण है। यह सन्निकर्ष छ प्रकारका होता है— (१) संयोग, (२) संयुक्तसमवाय, (३) संयुक्तसमवेतसमवाय, (४) समवाय, (५) समवेत समवाय और (६) विशेषण विशेष्यभाव।

चक्षुषा घटप्रत्यक्षजनने संयोगः संनिकर्षः।

(पं०) संयोगमुदाहरति—चक्षुषेति। तथाच द्रव्यचाक्षुषत्वाचमानसेषु संयोग एव संनिकर्ष इति भावः।

(हिन्दी) चक्षु आदि इन्द्रियसे घटपट आदि विषयके प्रत्यक्ष करनेमें "संयोग" सन्निकर्ष है।

घटरूपप्रत्यक्षजनने संयुक्तसमवायः संनिकर्षः। चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपस्य समवायात्।

(प०) घटरूपेति। चक्षुषा इत्यनुषज्यते। तथाच द्रव्यसमवेतचाक्षुषत्वाचमानसरासनघ्राणजेषु संयुक्तसमवाय एव संनिकर्ष इत्यर्थः।

(हिन्दी) घट-पट आदिमें होनेवाले लाल, पीले आदि रूपके प्रत्यक्ष करनेमें "संयुक्तसमवाय" सन्निकर्ष है क्योंकि चक्षु से संयुक्त घटमें लाल पीला आदि रूप समवाय सम्बन्धसे रहता है।

रूपत्वसामान्यप्रत्यक्षे संयुक्तसमवेतसमवायः संनिकर्षः। चक्षुःसंयुक्ते घटे रूपं समवेतं तत्र रूपत्वस्य समवायात्।

(प०) रूपत्वेति। रूपत्वात्मकं यत्सामान्यं तत्प्रत्यक्ष इत्यर्थः। अत्रापि चक्षुषा इत्यनुषज्यते। तथाच द्रव्यसमवेतसमवेतचाक्षुषरासनघ्राणजस्पार्शनमानसेषु संयुक्तसमवेतसमवाय एव संनिकर्ष इति भावः। अथ द्रव्यतत्समवेतप्रत्यक्षेऽपि संयुक्तसमवेतसमवाय एव संनिकर्षोऽस्त्विति चेन्न तत्। ईश्वरात्मादे (आत्मसुखादे ?) रनध्यक्षत्वप्रसङ्गात्॥

(हिन्दी) घट-पट आदिमें होनेवाले लाल पीले आदि रूपकी रूपत्व जातिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रत्यक्ष "संयुक्त समवेत समवाय" सम्बन्धसे होता है क्योंकि चक्षुसे संयुक्त हुआ घट उसमें समवेत हुआ रूप उसमें समवाय सम्बन्धसे रूपत्व रहता है।

श्रोत्रेण शब्दसाक्षात्कारे समवायः संनिकर्षः। कर्णविवरवर्त्याकाशस्य श्रोत्रत्वाच्छब्दस्याकाशगुणत्वात् गुणगुणिनोश्च समवायात्। शब्दत्वसाक्षात्कारे समवेतसमवायः संनिकर्षः। श्रोत्रसमवेते शब्दे शब्दत्वस्य समवायात्।

(प०) समवायसंनिकर्षमुदाहरति—श्रोत्रेणेति। जननीय इति शेषः। ननु श्रोत्रशब्दयोः कथं समवाय इत्यपेक्षमाणं प्रति तमुपपाद्य दर्शयति—कर्णेति। अथ समवायस्य नित्यत्वेन शब्दप्रत्यक्षे को व्यापार इति चेत् शब्दः, श्रोत्रमनःसंयोगावेति गृहाण। शब्दत्वेति। श्रोत्रेण जननीये इत्यनुकर्षशेषौ।

[हिन्दी] कानसे शब्दके प्रत्यक्ष करनेमें समवाय सन्निकर्ष है। क्योंकि कानके छिद्रमें होनेवाला जो आकाश [अवकाश अर्थात् पोला स्थान] है, वही कर्णेन्द्रिय है और शब्द आकाशका गुण है और गुण और गुणीका सम्बन्ध समवाय हुआ करता है। इसलिये कानका और शब्दका समवाय सम्बन्ध है।

कर्णेन्द्रिय द्वारा शब्दगत शब्दत्व जातिके प्रत्यक्ष करनेमें समवेत-समवाय सन्निकर्ष है। क्योंकि कर्णेन्द्रियमें समवेत (समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले) शब्दमें शब्दत्व जाति समवाय सम्बन्धसे रहती है।

अभावप्रत्यक्षे विशेषणविशेष्यभावः संन्निकर्षः। घटाभाववद्भूतलमित्यत्र चक्षुःसंयुक्ते भूतले घटाभावस्य विशेषणत्वात्।

(प०) विशेषणेति। विशेषणभावो विशेष्यभावश्चेति बोध्यम्। इन्द्रियसंबद्धविशेषणत्वमिन्द्रियसंबद्धविशेष्यत्वमिति यावत्। विशेषणभावसंनिकर्षमुपपाद्य दर्शयति—घटाभाववदिति। इह भूतले घटो नास्तीत्यादौ विशेष्यतासनिकर्षोऽवसेयः। सप्तम्यन्तस्य विशेषणत्वात्॥

(हिन्दी) घटाभाव, पटाभाव आदि अभाव प्रत्यक्षमें विशेषण विशेष्यभाव सन्निकर्ष है क्योंकि "घटाभाववद्भूतलम्" यहां चक्षुसे संयुक्त भूतल विशेष्य है और उसमें घटाभाव विशेषण है।

एवं संनिकर्षषट्कजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं तत्करणमिन्द्रियं, तस्मादिन्द्रियं प्रत्यक्षप्रमाणमिति सिद्धम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प०) प्रत्यक्षप्रमाणमुपसंहरति—एवमिति। उपदर्शितक्रमेणेत्यर्थः। ननु सिद्धान्ते प्रत्यक्षज्ञानकरणमिन्द्रियार्थसंनिकर्षः किं न स्यादिति चेन्नेत्याह—तत्करणमिति। प्रत्यक्षप्रमाणं निगमयति—तस्मादिति। प्रत्यक्षप्रमाकरणत्वादित्यर्थः। सिद्धमिति। न्यायसिद्धान्ते सिद्धमित्यर्थः।

(हिन्दी) इस प्रकार छ सन्निकर्षोंसे उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। चक्षु आदि इन्द्रियां इसज्ञानकी कारण हैं, इसलिये इन्द्रियां ही प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इति पदकृत्यके प्रत्यक्षपरिच्छेदः ॥

अनुमानपरिच्छेदः।

अनुमितिकरणमनुमानम्

(न्या०) अनुमानं लक्षयति—अनुमितीति। अनुमितौ व्याप्तिज्ञानं करणं, परामर्शो व्यापारः, अनुमितिः फलं, कार्यमित्यर्थः। परामर्शस्य व्याप्तिज्ञानजन्यत्वाद् व्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिजनकत्वात्तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वरूपव्यापारत्वमुपपन्नम्। अनुमितिकरणत्वमनुमानस्य लक्षणम्। अनुमानं व्याप्तिज्ञानम्। एतस्य परामर्शरूपव्यापारद्वारा अनुमितिं प्रत्यसाधारणकारणतयानुमितिकरणत्वमुपपन्नम्।

(प०) प्रत्यक्षानुमानयोः कार्यकारणभावसङ्गतिमभिप्रेत्य प्रत्यक्षानन्तरमनुमानं निरूपयति—अनुमितीति। अनुमितेः करणमनुमानमित्यर्थः। तच्च लिङ्गपरामर्श एवेति निवेदयिष्यते। कुठारादावतिव्याप्तिवारणाय अनुमितीति। प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय अन्विति।

(हिन्दी) अनुमतिके करणको अनुमान कहते है।

परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः।

(न्या०) परामर्शजन्यमिति। परामर्शजन्यत्वविशिष्टज्ञानत्वमनुमितेर्लक्षणम्। अत्र ज्ञानत्वमात्रोपादाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः, अतस्तद्वारणाय परामर्शजन्यत्वे सतीति विशेषणोपादानम्। परामर्शजन्यत्वमात्रोक्तौ परामर्शध्वंसेऽतिव्याप्तिरतस्तद्वारणाय ज्ञानत्वोपादानम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प०) नन्वनुमितेरेव दुर्निरूपत्वात्तद्घटितानुमानमपि दुर्निरूपमित्यत आह—परामर्शेति। प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिवारणाय परामर्शजन्यमिति। परामर्शध्वंसवारणाय ज्ञानमिति। परामर्शप्रत्यक्षवारणाय हेत्वविषयकमित्यपि बोध्यम्।

(हिन्दी) परामर्श ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान को अनुमिति कहते हैं।

व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः। यथा वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानं परामर्शः। तज्जन्यं पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिः।

(न्या०) अनुमितिलक्षणघटकीभूतपरामर्शलक्षणमाचष्टे—व्याप्तिविशिष्टेति। व्याप्तिविशिष्टं च तत्पक्षधर्मताज्ञानं चेति कर्मधारये—विशिष्टपदस्य प्रकारतानिरूपकत्वात्, पक्षधर्मताज्ञानमित्यत्र षष्ठ्या विषयत्वबोधनात्, धर्मतापदस्य संबन्धार्थकत्वाच्च, कर्मधारयसमासे समस्यमानपदार्थयोरभेदसंसर्गलाभेन च—व्याप्तिप्रकारकाभिन्नं यत्पक्षसंबन्धविषयकं ज्ञानं तत्परामर्श इति लभ्यते। एवं सति 'धूमो वह्निव्याप्यः' 'आलोकवान्पर्वतः' इत्याकारकसमूहालम्बने परामर्शलक्षणमस्तीत्यतिव्याप्तिस्तद्वारणाय पक्षनिष्ठविशेष्यतानिरूपिता या हेतुनिष्ठा प्रकारता तन्निरूपिता या व्याप्तिनिष्ठा प्रकारता तच्छालि ज्ञानं परामर्श इति निष्कर्षः। एतादृशपरामर्शजन्यत्वे सति ज्ञानत्वमनुमितेर्लक्षणम्। अनुमितिपरामर्शयोर्विशिष्य कार्यकारणभावश्चेत्थम्। पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपित—संयोगसंबन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्न—विधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति वह्निव्याप्तिप्रकारतानिरूपिता या धूमत्वावच्छिन्ना प्रकारता तन्निरूपिता पर्वतत्वावच्छिन्ना विशेष्यता तच्छालिनिर्णयः कारणम्। स च निर्णयः वह्निव्याप्यधूमवान्पर्वत इत्याकारको बोध्यः।

(प०) व्याप्तिविशिष्टेति। विषयितासंबन्धेन व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्श इत्यर्थः। घटादिज्ञानवारणाय पक्षधर्मतेति। धूमवान्पर्वत इत्यादिज्ञानवारणाय व्याप्तिविशिष्टेति। तदिति। परामर्शजन्यमित्यर्थः।

(हिन्दी) व्याप्ति विशिष्ट हेतु=धूम आदि का पक्ष=पर्वत आदि में रहने के ज्ञान को परामर्श कहते हैं। जैसे—"यह पर्वत वन्हिव्याप्य अर्थात् वन्हिव्याप्ति विशिष्ट धूमवाला है" यह ज्ञान परामर्श है। और इस परामर्श से उत्पन्न—"पर्वत वन्हिवाला है"—यह ज्ञान अनुमिति है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निरिति साहचर्यनियमो व्याप्तिः।

(न्या०) यत्र यत्रेति। यत्रपदवीप्सावशाद्धूमाधिकरणे यावति वह्निमत्त्वलाभाद्यावत्पदमहिम्ना वह्नेर्धूमव्यापकत्वं लब्धम्। तदेव स्पष्टयति—साहचर्यनियम इति। एतदर्थस्तु नियतसाहचर्यं व्याप्तिरिति। नियतत्वं व्यापकत्वम्। साहचर्यं नाम सामानाधिकरण्यम्। तथाच धूमवियतवह्निसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरित्यर्थः। अत्र वह्नेर्धूमव्यापकत्वं धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वम्। यथाहि—धूमाधिकरणे पर्वतचत्वरमहानसादौ वर्तमानो योऽभावः घटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः, न तु वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः। कुतः, पर्वतादौ वह्नेः सत्त्वात्। एवं सति धूमाधिकरणे पर्वतचत्वरादौ वर्तमानस्य घटाद्यभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकं घटत्वादिकमनवच्छेदकं वह्नित्वं वह्नौ वर्ततेऽतो धूमव्यापकत्वं वह्नौ वर्तते। इयमन्वयव्याप्तिः सिद्धान्तानुसरेण। पूर्वपक्षव्याप्तिस्तु—साध्याभाववदवृत्तित्वम्। साध्यतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक—प्रतियोगितावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नवैयधिकरण्यावच्छिन्ना भाववन्निरूपितहेतुतावच्छेदकसंबन्धावच्छिन्नवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति निष्कर्षः। तत्र केवलान्वयिन्यव्याप्तमिति सिद्धान्तानुसरणम्।

(प०) यत्रयत्रेति। यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति व्याप्तेरभिनयः। तत्र साहचर्यनियम इति लक्षणम्। सह चरतीति सहचरस्तस्य भावः साहचर्यं सामानाधिकरण्यमिति यावत्। तस्य नियमो व्याप्तिरित्यर्थः। स चाव्यभिचारितत्वम्। तच्च व्यभिचाराभावः। व्यभिचारश्च साध्याभाववद्वृत्तित्वम्। तथाच साध्याभाववदवृत्तित्वं व्याप्तिरिति पर्यवसन्नम्। महानसं वह्निमत्, धूमादित्यादौ साध्यो वह्निस्तदभाववान् जलह्रदादिस्तद्वृत्तित्वं नौकादाववृत्तित्वं प्रकृते हेतुभूते धूमे इति कृत्वा लक्षणसमन्वयः। धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध्यो धूमस्तदभाववदयोगोलकं तद्वृत्तित्वमेव वह्न्यादाविति नातिव्याप्तिः।

(हिन्दी) जहां जहां धूम है वहां वहां अग्नि है—इस साहचर्य (एक साथ रहनेके) नियम को व्याप्ति कहते हैं।

व्याप्यस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प०) ननु ज्ञातेयं व्याप्तिः पक्षधर्मताज्ञानमित्यत्र का नाम पक्षधर्मता इत्यपेक्षमाणं प्रति तत्स्वरूपं निरूपयति—व्याप्यस्येति । व्याप्यो नाम व्याप्त्याश्रयः । स च धूमादिरेव तस्य पर्वतादिवृत्तित्वं पक्षधर्मतेत्यर्थः ।

(हिन्दी) व्याप्य अर्थात् व्याप्तिविशिष्ट धूम आदिका पर्वत आदि पक्षमें जो रहना इसको पक्षधर्मता कहते हैं ।

अनुमानं द्विविधं स्वार्थं परार्थं च ।

(न्या०) अनुमानं विभजते—स्वार्थमिति ।

(प०) अथ कथमनुमानमनुमितिकरणं कथं वा तस्मादनुमितेर्जनिरिति जिज्ञासमानं प्रति लाघवादनुमानविभागमुखेनैव बुबोधयिषुरनुमानं विभजते—अनुमानमिति । द्वैविध्यं दर्शयति—स्वार्थं परार्थं चेति ।

(हिन्दी) अनुमान दो प्रकार का है । एक स्वार्थानुमान और दूसरा परार्थानुमान ।

स्वार्थं स्वानुमितिहेतुः । तथाहि—स्वयमेव भूयोदर्शनेन यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निरिति महानसादौ व्याप्तिं गृहीत्वा पर्वतसमीपं गतस्तद्गते चाग्नौ संदिहानः पर्वते धूमं पश्यन् व्याप्तिं स्मरति 'यत्र यत्र धूमस्तत्राग्निः' इति तदनन्तरं वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वत इति ज्ञानमुत्पद्यते । अयमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । तस्मात्पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानमनुमितिरुत्पद्यते । तदेतत्स्वार्थानुमानम् ।

(न्या०) स्वार्थानुमानं नाम न्यायप्रयोज्यानुमानम् ।

(प०) स्वस्यार्थः प्रयोजनं यस्मात् तत्स्वार्थमिति समासः । स्वप्रयोजनं च स्वस्यानुमेयप्रतिपत्तिः । एवं परार्थमित्यस्यापि । अयमिति । व्याप्तिबलेन लीनमर्थं गमयतीति लिङ्गम् । तच्च धूमादि । तस्य परामर्शो ज्ञानविशेष इत्यर्थः । तस्मादिति । लिङ्गपरामर्शादित्यर्थः । स्वार्थानमानमुपसंहरति—तदेतदिति । यस्मादिदं स्वप्रतिपत्तिहेतुस्तस्मादेतत्स्वार्थानुमानमित्यर्थः ।

(हिन्दी) अपनी अनुमितिके हेतुको स्वार्थानुमान कहते हैं । जैसेः—स्वयं ही बार-बार देखनेसे जहां-जहां धूम है वहां-वहां अग्नि है इस तरह पाकशाला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदिमें व्याप्तिको ग्रहण कर पर्वतके समीप गया और वहां जानेपर अग्निके होनेमें सन्देह करता हुआ पर्वतमें धूमको देखकर जहां-जहां धूआं रहता है, वहां-वहां अग्नि रहता है, इस तरहकी व्याप्तिका स्मरण करता है, इसके बाद "वह्नि व्याप्य धूमवाला यह पर्वत है—" यह ज्ञान उत्पन्न होता है। इसी ज्ञानको लिङ्गपरामर्श कहते हैं। इस प्रकारके ज्ञानसे पर्वत वह्निवाला है यह ज्ञान उत्पन्न होता है। इसीको स्वार्थानुमान कहते हैं।

यत्तु स्वयं धूमादग्निमनुमाय परं प्रति बोधयितुं पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानम्। यथा पर्वतो वह्निमान्। धूमवत्त्वात्। यो यो धूमवान्स स वह्निमान् यथा महानसम्। तथा चायम्। तस्मात्तथेति। अनेन प्रतिपादिताल्लिङ्गात्परोऽप्यग्निं प्रतिपद्यते।

(न्या०) न्यायप्रयोज्यानुमानं परार्थानुमानम्। न्यायत्वं च प्रतिज्ञाद्यवयवपञ्चकसमुदायत्वम्। अवयवत्वं च प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वम्।

(प०) क्रमप्राप्तं परार्थानुमानमाह—यत्त्विति। यत्पञ्चावयववाक्यं प्रयुज्यते तत्परार्थानुमानमिति संबन्धः। पञ्चावयवेति। अथावयवत्वं नाम द्रव्यसमवायिकारणत्वम्। प्रतिज्ञादिषु तदसंभवात्कथमेतेऽवयवाः स्युः रिति चेदनुमानवाक्यैकदेशत्वात्तु अवयवा इत्युपचर्यत इति गृहाण। नन्वेवमपि पञ्चावयववाक्यस्यानुमानत्वमेव न विचारसहं, तस्य लिङ्गपरामर्शत्वाभावादिति चेन्मैवम्। लिङ्गपरामर्शप्रयोजकलिङ्गप्रतिपादकत्वेनानुमानमित्युपचारमात्रत्वात्। तदुदाहरति—यथेति। यथा चायमिति। अयं च पर्वतस्तथा वह्निव्याप्यधूमवानित्यर्थः। तस्मात्तथेति। वह्निव्याप्यधूमवत्त्वाद्वह्निमानित्यर्थः। अनेनेति। अनेन पञ्चावयववाक्येनेत्यर्थः।

(हिन्दी) जहां स्वयं धूएँसे अग्निका अनुमान करके दूसरेके समझानेके लिये पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग किया जाता है उसे परार्थानुमान कहते हैं। जैसेः— पर्वत वह्निवाला है, धूमवाला होनेसे जो जों धूमवाला है वह वह वन्हिवाला है, जैसे महानस (रसोईघर) उसीतरह यह पर्वत भी है अर्थात् धूमयुक्त है इसलिये वैसाहै अर्थात् अग्नियुक्त है इस तरह बताये हुए लिङ्गसे दूसरा भी पर्वतमें अग्नि की सत्ताको जान लेता है।

प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनानि पञ्चावयवाः। पर्वतो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वह्निमानिति प्रतिज्ञा । धूमवत्त्वादिति हेतुः । यो यो धूमवान् स स वह्निमानित्युदाहरणम् । तथा चायमित्युपनयः तस्मात्तथेति निगमनम् ।

(प०) ननु पञ्चावयववाक्यमित्यत्र के ते पञ्चावयवाः अतस्तान्दर्शयति—प्रतिज्ञेति । प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वमवयवत्वम् । साध्यविशिष्टपक्षबोधकवचनं प्रतिज्ञा । पञ्चम्यन्तं तृतीयान्तं वा लिङ्गवचनं हेतुः । व्याप्तिप्रतिपादकदृष्टान्तवचनमुदाहरणम् । उदाहृतव्याप्तिविशिष्टत्वेन हेतोः पक्षधर्मताप्रतिपादकवचनमुपनयः । पक्षे साध्यस्याबाधितत्वप्रतिपादकवचनं निगमनम् । इदमेव लक्षणं हृदि निधाय प्रतिज्ञादीन्विशिष्य दर्शयति—पर्वतो वह्निमानित्यादिना ।

(हिन्दी) प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन ये पञ्चावयव कहे जाते हैं । इसीको न्यायावयव भी कहते हैं । पर्वत वन्हिवाला है, इसको प्रतिज्ञा कहते हैं, धूमवाला होने से, इसको हेतु कहते हैं, जो जो धूमवाला है, वह वह वन्हिवाला है, जैसे रसोई घर, इसको उदाहरण कहते हैं—यह पर्वत भी वैसा ही है, इसको उपनय कहते हैं, इसलिये यह पर्वत भी वन्हिवाला है इसको निगमन कहते हैं ।

स्वार्थानुमितिपरार्थानुमित्योर्लिङ्गपरामर्श एव करणम् । तस्माल्लिङ्गपरामर्शोऽनुमानम् ।

(प०) लिङ्गेति । ज्ञायमानं लिङ्गमनुमितिकरणमिति वृद्धोक्तं न युक्तम्, इयं यज्ञशाला वह्निमती, अतीतधूमादित्यादौ लिङ्गाभावेऽप्यनुमितिदर्शनादित्यभिप्रायवल्लिङ्गपरामर्श एव करणमित्याचष्टे—लिङ्गपरामर्श एवेति । अनुमानमुपसंहरति—तस्मादिति । अनुमितिकरणत्वादित्यर्थः । अयमेव तृतीयज्ञानमित्युच्यते । तथाहि—महानसादौ धूमाग्न्योर्व्याप्तौ गृह्यमाणायां यद्धूमज्ञानं तदादिमम् । पक्षे यद्धूमज्ञानं तद्द्वितीयम् । अत्रैव वह्निव्याप्यत्वेन यद्धूमज्ञानं तत्तृतीयम् । इदमेव लिङ्गपरामर्श इत्युच्यते । अनुमानमिति । व्यापारवत्कारणं करणमिति मते व्याप्तिज्ञानमेवानुमानं लिङ्गपरामर्शो व्यापार इत्यवसेयम् ।

(हिन्दी) स्वार्थानुमिति और परार्थानुमिति का करण (असाधारण कारण) लिङ्गपरामर्श ही है । इसलिये लिङ्गपरामर्श ही अनुमान प्रमाण है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिङ्गं त्रिविधम्। अन्वयव्यतिरेकि, केवलान्वयि केवलव्यतिरेकि चेति। अन्वयेन व्यतिरेकेण च व्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकि। यथा वह्नौ साध्ये धूमवत्त्वम्। यत्र धूमस्तत्राग्निर्यथा महानसमित्यन्वयव्याप्तिः। यत्र वह्निर्नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति यथा ह्रद इति व्यतिरेकव्याप्तिः।

(न्या०) अन्वयेनेति। व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिमानित्यर्थः। व्यतिरेकेणेति। व्यतिरेको नामाभावः। तथा च साध्याभावहेत्वभावयोर्व्याप्तिर्व्यतिरेकव्याप्तिः। इयं च व्याप्तिर्यत्र यत्र वह्न्यभावस्तत्र तत्र धूमाभाव इति। यत्रपदवीप्सया वह्न्यभाववति यावति धूमाभावग्रहणे यावत्पदस्य व्यापकत्वपरतया धूमाभावे वह्न्यभावव्यापकत्वं लभ्यते। एवंच वह्न्यभावनिष्ठव्याप्तेः स्वाश्रयीभूतवह्न्यभावव्यापकीभूताऽभावप्रतियोगित्वसंबन्धेन धूमनिष्ठतया व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वेन [धूमवत्त्वं] व्यतिरेकित्वेन, धूमव्यापकवह्निसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिमत्त्वेनान्वयित्वेन च गीयते। व्यतिरेकपरामर्शस्तु वह्न्यभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिधूमवान्पर्वत इत्याकारकः।

(प०) अन्वयव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—अन्वयेति। तृतीयायाः प्रयोज्यत्वमर्थः। साध्यसाधनयोः साहचर्यमन्वयः। तदभावयोः साहचर्यव्यतिरेकः। तथा चान्वयप्रयोज्यव्याप्तिमद्व्यतिरेकप्रयोज्यव्याप्तिमदन्वयव्यतिरेकीत्यर्थः केवलव्यतिरेकिव्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेनेति। केवलान्वयिनि व्यभिचारवारणाय व्यतिरेकेणेति। तथा चान्वयव्याप्तिरुपदर्शितैव। व्यतिरेकव्याप्तिश्च साध्याभावव्यावकीभूताभावप्रतियोगित्वमित्यर्थः। तदुक्तं—व्याप्यव्यापकभावो हि भावयोर्यादृगिष्यते। तयोरभावयोस्तस्माद्विपरीतः प्रतीयते। अन्वये साधनं व्याप्यं साध्यं व्यापकमिष्यते। साध्याभावोऽन्यथा व्याप्यो व्यापकः साधनात्ययः॥ इति॥

(हिन्दी) अन्वय व्यतिरेकि, केवलान्वयि और केवल व्यतिरेकि भेदसे लिङ्ग तीन प्रकार का है। जिस लिङ्ग में अन्वय व्याप्ति भी हो और व्यतिरेकव्याप्ति भी हों उसे अन्वय व्यतिरेकि कहते हैं, जैसे पर्वतमें वन्हिको सिद्ध करनेमें धूम हेतु अन्वय व्यतिरेकि है। जहां धूम है वहां अग्नि है, जैसे महानस (रसोई घर) यह अन्वय व्याप्ति है। जहां वन्हि नहीं है वहां धूआं भी नहीं है यह व्यतिरेक व्याप्ति है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयि । यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वात्पटवत् अत्र प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिर्नास्ति सर्वस्यापि प्रमेयत्वादभिधेयत्वाच्च ।

(न्या०) केवलान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति । व्यतिरेकव्याप्तिशून्यत्वेसति, अन्वयव्याप्तिमत्त्वं केवलान्वयित्वम्, अथवा केवलान्वयिसाध्यकत्वं हेतोः केवलान्वयित्वं साध्ये केवलान्वयित्वञ्चान्ताभावाप्रतियोगित्वम् तथाच—अभावाप्रतियोगिसाध्यकत्वं केवलान्वयिहेतोर्लक्षणम् । एतच्च लक्षणं हेतोर्व्यतिरेकित्वेऽपि संगच्छते । साध्यस्य केवलान्वयित्वादेव व्यतिरेकव्याप्तेरभावादन्वयमात्रव्याप्तिकं केवलान्वयीति मूलकारोक्तं लक्षणमुपपन्नम् । नचात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वमाकाशाभावे संयोगाभावे चाव्याप्तमिति वाच्यम्, स्वविरोधिवृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्यैव तदर्थत्वात् । एकजातीयसंबन्धेन सर्वत्र विद्यमानत्वं केवलान्वयित्वमिति नव्याः ।

(प०) केवलान्वयिनो लक्षणमाह—अन्वयेति । अन्वयेनैव व्याप्तिर्यस्मिन् स तथा । प्रमेयत्वाभिधेयत्वयोर्व्यतिरेकव्याप्तिं निराकरोति—यत्रेति । अभिधेयत्वसाध्यकानुमान इत्यर्थः । कुतस्तन्निषेधोऽतस्तत्र हेतुमाह—सर्वस्येति । पदार्थमात्रस्येत्यर्थः । तथाच सकलपदाभिधेयत्वस्येश्वरप्रमाविषयत्वस्य चात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपकेवलान्वयित्वेन तद्भावाप्रसिद्ध्या तद्घटितव्यतिरेकव्याप्तिर्न संभवत्येवेति भावः ।

(हिन्दी) जिस लिङ्ग (हेतु) में केवल अन्वयव्याप्ति ही हो उसे केवलान्वयी कहते हैं, जैसे—घट अभिधेय है प्रमेयत्व होनेसे, पट की तरह । यहां प्रमेयत्व और अभिधेयत्वकी व्यतिरेक व्याप्ति नहीं है, क्योंकि सभी पदार्थोंमें अभिधेयत्व और प्रमेयत्व है, इसका कहीं भी अभाव नहीं है ।

व्यतिरेकमात्रव्याप्तिकं केवलव्यतिरेकि । यथा पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात् । यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत् । यथा जलम् । न चेयं तथा । तस्मान्न तथेति । अत्र यद्गन्धवत् तदितरभिन्नमित्यन्वयदृष्टान्तो नास्ति । पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वात् ।

(न्या०) केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति । अन्वयव्याप्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शून्यत्वे सति व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वं केवलव्यतिरेकित्वम्। यथा पृथिवीति। अत्र पृथिवीत्वावच्छिन्नं पक्षः। पृथिवीतरजलाद्यष्टभेदः साध्यः। गन्धवत्त्वं हेतुः। अत्र यद्गन्धवत्तदितरभेदवदित्यन्वयदृष्टान्ताभावाद्गन्धव्यापकेतरभेदसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिग्रहासंभवात्। किं तु यत्र यत्र पृथिवीतरभेदाभावस्तत्र तत्र गन्धाभावो यथा जलादिकमिति व्यतिरेकदृष्टान्ते जलादावितरभेदाभावरूपसाध्याभावव्यापकता गन्धाभावे गृह्यते। इममेवार्थं मनसि निधाय यदितरेभ्यो न भिद्यते न तद्गन्धवत् यथा जलमिति ग्रन्थेन मूलकारो व्यतिरेकव्याप्तिमेव प्रदर्शितवान्। एवंप्रकारेण व्यतिरेकव्याप्तिग्रहानन्तरमितरभेदाभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिगन्धवती पृथिवीत्याकारकव्यतिरेकिपरामर्शात् पृथिवीत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितेतरभेदत्वावच्छिन्नविधेयताका पृथिवी इतरभेदवतीत्याकारकानुमितिर्जायत इति तत्त्वम्। यथाश्रुतमूलार्थस्तु—यथा जलमिति। जलं इतरभेदाभाववत् इतरभेदाभावव्यापकगन्धाभाववच्च। इत्येवंप्रकारेण गन्धाभावनिरूपिता व्याप्यता इतरभेदाभावे गृह्यत इत्यर्थः। न चेयं तथा। इयं=पृथिवी तथा इतरभेदाभावव्यापकगन्धाभाववती न, किं तु तदभावात्मकगन्धवती। तस्मान्न तथेति। तच्छब्देन गन्धाभावाभावरूपस्य गन्धस्य परामर्शेन तस्मादिति पञ्चम्यन्तात् गन्धाभावाभाववत्त्वादित्यर्थोपलब्धिः। तथा=इतरभेदाभाववती। न इत्यस्याभावः। तथाच इतरभेदाभावाभाववती इतरभेदवतीत्यर्थः।

(प०) केवलव्यतिरेकिणो लक्षणमाह—व्यतिरेकेति। व्यतिरेकेणैव व्याप्तिर्यस्मिंस्तत्तथा। अन्वयव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय मात्रेति। न चेयं तथेति। इयं पृथिवी न तथा न गन्धाभाववतीत्यर्थः। तस्मान्न तथेति। गन्धाभाववत्त्वाभावादितरभेदाभाववती नेत्यर्थः। नन्वत्र किमिति नान्वयव्याप्तिरित्याशङ्क्य परिहरति—अत्रेति। इतरभेदसाधकानुमान इत्यर्थः। इदमुपलक्षणम्। जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात्। यन्नैवम् तन्नैवम्, यथा घटः। प्रत्यक्षादिकं प्रमाणमिति व्यवहर्तव्यं प्रमाकरणत्वात्। यन्नैवं तन्नैवम्। यथा प्रत्यक्षाभासः। विवादास्पदम् आकाशमिति व्यवहर्तव्यं शब्दवत्त्वादित्यादिकमपि केवलव्यतिरेकीति द्रष्टव्यम्।

(हिन्दी) जिस हेतुमें केवल व्यतिरेक व्याप्ति ही हो उसे केवल व्यतिरेकि कहते हैं। जैसे—पृथ्वी, इतर (जलादि) पदार्थों से भिन्न है, उसमें गन्ध रहने से, जो इतर पदार्थों से भिन्न नहीं हैं वह गन्धवाला नहीं है जैसे—जल। यह पृथ्वी वैसी नहीं है अर्थात् गन्धशून्य नहीं है, इसलिये वह इतर पदार्थों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की तरह नहीं है। यहां जो गन्धवाला है, वह इतर पदार्थों से भिन्न है" ऐसा अन्वय दृष्टान्त नहीं है क्योंकि यहां पृथ्वी मात्र पक्ष है।

संदिग्धसाध्यवान् पक्षः। यथा धूमवत्त्वे हेतौ पर्वतः।

(न्या०) पक्षलक्षणमाह—संदिग्धेति। साध्यप्रकारकसंदेहविशेष्यत्वं पक्षत्वम्। इदं च लक्षणमनुमितेः पूर्वं साध्यसंदेहो नियमेन जायत इत्यभिप्रायेण प्राचीनैः कृतम्। गगनविशेष्यकमेघप्रकारकसंदेहाभावदशायामपि गृहमध्यस्थपुरुषस्य घनगर्जितश्रवणेन गगनं मेघवदित्याकारिकाया गगनत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितमेघत्वावच्छिन्नविधेयताकाया अनुमितेर्दर्शनात्प्राचीनलक्षणं विहाय नवीनैरनुमित्युद्देश्यत्वं पक्षत्वमिति स्थिरीकृतम्।

(प०) अथ पृथिवीमात्रस्य पक्षत्वादित्यत्र किं नाम पक्षतेत्यपेक्षायां तां निर्वक्ति—संदिग्धेति। सपक्षवारणाय संदिग्धेति।

(हिन्दी) जिसमें साध्यका सन्देह हो उसको पक्ष कहते हैं, जैसे धूम हेतु में पर्वत पक्ष है।

निश्चितसाध्यवान् सपक्षः। यथा तत्रैव महानसम्।

(न्या०) सपक्षलक्षणमाह—निश्चितेति। साध्यप्रकारकनिश्चयविशेष्यत्वं सपक्षत्वम्। निश्चयश्च महानसं वह्निमदित्याकारकः।

(प०) निश्चितेति। पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति। तत्रैवेति। धूमवत्त्वे हेतावेवेत्यर्थः।

(हिन्दी) जिसमें साध्य का निश्चय हो, उसको सपक्ष कहते हैं, जैसे—वहीं ("पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इसी स्थलमें) महानस (रसोई घर)।

निश्चितसाध्याभाववान् विपक्षः। यथा तत्रैव महाह्रदः।

(न्या०) विपक्षलक्षणमाह—निश्चितसाध्याभावेति। साध्याभावप्रकारकनिश्चयविशेष्यत्वं विपक्षत्वम्। निश्चयश्च ह्रदो वह्न्यभाववानित्याकारकः।

(प०) निश्चितेति। सपक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय साध्येति। पक्षेऽतिव्याप्तिवारणाय निश्चितेति। तत्रैव धूमवत्त्व एव।

(हिन्दी) जिसमें साध्यके अभाव का निश्चय हो उसको विपक्ष कहते हैं, जैसे—वहीं (धूमहेतुस्थलमें) महाह्रद (बड़ा तालाब)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सव्यभिचारविरुद्धसत्प्रपिपक्षासिद्धबाधिताः पञ्च हेत्वाभासाः।

(न्या०) एवं सद्धेतून्निरूप्य हेत्वाभासान्निरूपयति—सव्यभिचारेति। हेतुवदाभासन्त इति हेत्वाभासाः। दुष्टहेतव इत्यर्थः। दोषाश्च व्यभिचारविरोधसत्प्रतिपक्षासिद्धिबाधाः। एतद्विशिष्टा हेतवो दुष्टहेतव इत्यर्थः। यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिस्तत्करणान्यतरप्रतिबन्धकत्वं तत्त्वं दोषसामान्यस्य लक्षणम्। हेतौ दोषज्ञाने सत्यनुमितिप्रतिबन्धो जायते व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धो वा। अतो वादिनिग्रहाय वादिनोद्भाविते हेतौ दोषोद्भावनार्थं दुष्टहेतुनिरूपणमित्यर्थः। पर्वतो वह्निमान्, प्रमेयत्वादित्यत्र प्रमेयत्वहेतौ वह्न्यभाववद्वृत्तित्वरूपव्यभिचारे ज्ञाते वह्न्यभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम्।

(प०) हेतून्निरूप्य प्रसङ्गाद्धेत्वाभासानाह—सव्यभिचारेति। अत्रेदं बोध्यम्—अन्वयव्यतिरेकि तु पञ्चरूपोपपन्नं स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते तानि कानीति चेच्छ्रूयताम्। पक्षधर्मत्वं सपक्षसत्त्वं विपक्षाद्व्यावृत्तिरबाधितविषयत्वमसत्प्रतिपक्षत्वं चेति। अबाधितः साध्यरूपो विषयो यस्य तत्तथोक्तम्। तस्य भावस्तत्त्वम्। एवं साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्ष इत्युच्यते। स नास्ति यस्य सोऽसत्प्रतिपक्षः। तस्य भावस्तत्त्वमिति बोध्यम्। केवलान्वयि तु चतूरूपोपपन्नमेव स्वसाध्यं साधयितुं क्षमते, तस्य विपक्षविपर्ययेण तद्व्यावृत्तिविपर्ययात्। केवलव्यतिरेक्यपि तथा, तस्य सपक्षविपर्ययेण तत्सत्त्वविपर्ययादिति। उपदर्शितरूपाणां मध्ये कतिपयरूपोपपन्नत्वात्। हेतुवदाभासन्ते इति हेत्वाभासाः। तत्त्वं चानुमितितत्करणान्यतरप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषत्वम्। बाधस्थले वह्निरनुष्ण इत्यनुमितिप्रतिबन्धकं यज्ज्ञानमुष्णत्ववद्वह्नावनुष्णत्वसाधकं द्रव्यत्वमित्याकारकं तद्विषयत्वस्य विषयतासंबन्धेन द्रव्यत्वरूपहेत्वाभासे सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। सद्धेतुवारणाय यथार्थेति। घटादिवारणाय अनुमितितत्करणप्रतिबन्धकेति। व्यभिचारिणि अव्याप्तिवारणाय तत्करणान्यतरेति।

(हिन्दी) सव्यभिचार, विरुद्ध, सत्प्रतिपक्ष, असिद्ध और बाधित—ये पांच हेत्वाभास हैं—जो यथार्थ में हेतु नहीं है, पर हेतु की तरह प्रतीत होते हैं, उनको हेत्वाभास कहते हैं।

सव्यभिचारोऽनैकान्तिकः। स त्रिविधः साधारणासा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारणानुपसंहारिभेदात् । तत्र साध्याभाववद्वृत्तिः साधारणोऽनैकान्तिकः । यथा पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वादिति । प्रमेयत्वस्य वह्न्यभाववति ह्रदे विद्यमानत्वात् ।

(प०) तत्रेति । साधारणादित्रितयमध्य इत्यर्थः । अथ विरुद्धेऽतिप्रसक्तिरिति मा स्मदृप्यः सपक्षवृत्तित्वस्यापि निवेशात् । अथैवमपि स्वरूपासिद्धे दूषणं जागर्तीति मा वह गर्वं पक्षवृत्तित्वस्यापि तथात्वात् ।

(हिन्दी) सव्यभिचार को अनैकान्तिक कहते हैं । वह साधारण, असाधारण और अनुपसंहारि भेद से तीन प्रकार का है ।

जो हेतु साध्यके अभाव में भी रहे उस हेतुको साधारण हेतु कहते हैं । जैसे—पर्वत वह्निवाला है, प्रमेयत्व होने से । यहां प्रमेयत्व हेतु वह्न्य भावाधिकरण जलाशयमेंभी रहता है इसलिये "प्रमेयत्व" हेतु साधारण अनैकान्तिक हुआ ।

सर्वपक्षविपक्षव्यावृत्तः पक्षमात्रवृत्तिरसाधारणः । यथा शब्दो नित्यः शब्दत्वादिति । शब्दत्वं सर्वेभ्यो नित्येभ्योऽनित्येभ्यश्च व्यावृत्तं शब्दमात्रवृत्ति ।

(न्या०) असाधारण इति । सर्वसपक्षव्यावृत्तत्वं निश्चितसाध्यवदवृत्तित्वम् । साध्यवदवृत्तित्वं च साध्यासामानाधिकरण्यम । हेतौ साध्यासामानाधिकरण्ये निश्चिते साध्यसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम् ।

(प०) पक्षमात्रेति । सर्वे ये सपक्षा विपक्षास्तेभ्यो व्यावर्तत इति सर्वसपक्षविपक्षव्यावृत्तः । केवलव्यतिरेकिवारणाय तद्भिन्न इत्यपि देयम् ।

(हिन्दी) जो हेतु सभी सपक्षों और विपक्षों में न रहता हो, केवल पक्षमें ही रहता हो, उसको असाधारण हेतु कहते हैं ।

जैसे—शब्द, नित्य है, उसमें शब्दत्व होने से । यहां शब्दत्व हेतु सपक्ष और विपक्षरूप सभी नित्य और अनित्य पदार्थों में न रहकर केवल शब्दरूप पक्षमें ही रहता है इसलिये यह असाधारण हेतु है ।

अन्वयव्यतिरेकदृष्टान्तरहितोऽनुपसंहारी । यथा सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादिति । अत्र सर्वस्यापि पक्षत्वाद्दृष्टान्तो नास्ति ।

(न्या०) अनुपसंहारिणं लक्षयति—अन्वयेति । उभयत्र दृष्टान्ताभावा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दन्वयव्याप्तिज्ञानव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानोभयसामग्री नास्तीत्यर्थः। सर्वस्यैव पक्षत्वात्पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेरिति भावः।

(प०) अन्वयेति। केवलान्वयिन्यतिव्याप्तिवारणाय अन्वयेति। केवलव्यतिरेकिण्यतिव्याप्तिवारणाय व्यतिरेकेति अत्रेति। उपदर्शितानुमान इत्यर्थः।

(हिन्दी) जो हेतु अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्तसे रहित होवे वह हेतु अनुपसंहारी कहा जाता है, जैसे—"सभी पदार्थ अनित्य हैं, उसमें प्रमेयत्व होने से" यहां सभी पदार्थ पक्षके अन्तर्भूत है, इसलिये दृष्टान्त ही नहीं है।

साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः। यथा शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादिति। कृतकत्वं हि नित्यत्वाभावेनानित्यत्वेन व्याप्तम्।

(न्या०) विरुद्धं लक्षयति—साध्याभावव्याप्त इति। 'साध्याभावव्याप्तिः साध्याभावनिरूपितव्यतिरेकव्याप्तिः, साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वम्। तथाच पक्षविशेष्यकसाध्याभावव्याप्यहेतुप्रकारकज्ञानात् पक्षविशेष्यकसाध्यप्रकारकानुमितिप्रतिबन्धः फलम्। एवं सत्प्रतिपक्षेऽपि। विरुद्धसत्प्रतिपक्षयोर्विशेषस्तु विरुद्धहेतोरेकत्वेन सत्प्रतिपक्षहेतोर्द्वित्वेन च ज्ञातव्यः। सत्प्रतिपक्षे द्वौ हेतू, विरुद्धे एको हेतुरिति यावत्। साध्याभावसाधकहेतुः साध्यसाधकत्वेनोपन्यस्त इत्यसामर्थ्यसूचनमपि।

(प०) विरुद्धं लक्षयति—साध्येति। सद्धेतुवारणाय साध्याभावव्याप्त इति। सत्प्रतिपक्षवारणाय सत्प्रतिपक्षोभिन्न इत्यपि बोध्यम्। कृतेति। कार्यत्वादित्यर्थः। कृतकत्वमिति। अनित्यत्वेन व्याप्तमिति। यद्यत्कृतकं तत्तदनित्यमिति। व्याप्तिर्भवत्येव तथेति भावः।

(हिन्दी) साध्याभाव से व्याप्त—हेतुको विरुद्ध कहते हैं, जैसे—"शब्द नित्य है, उसमें कृतकत्व होने से" यहां कृतकत्व हेतु साध्याभाव अनित्यत्व से व्याप्त है।

साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः। यथा शब्दो नित्यः श्रावणत्वाच्छब्दत्ववत्। शब्दोऽनित्यः कार्यत्वाद्घटवत्॥

(प०) सत्प्रतिपक्षं लक्षयति—साध्येति। यस्य हेतोः साध्याभावसाधकं साध्याभावस्यानुमापकं हेत्वन्तरं प्रतिपक्षो हेतुःविद्यते स हेतुः सत्प्रतिपक्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्यर्थः । अयमेव प्रकरणसम इत्युच्यते । विरुद्धवारणाय हेत्वन्तरं यस्येति । वह्न्यादिवारणाय साध्याभावेति ।

(हिन्दी) जिस हेतुके साध्यके अभाव को सिद्ध करनेवाला दूसरा हेतु हो तो उसे सत्प्रतिपक्ष कहते हैं, जैसे—"शब्द नित्य है, श्रवणेन्द्रियजन्य ज्ञानका विषय होने से शब्दत्व की तरह"—"शब्द अनित्य है, उसमें कार्यत्व होनेसे घट की तरह" यहां दूसरे अनुमान का कार्यत्व हेतु प्रथम अनुमान के साध्याभाव अनित्यत्व का साधक हो गया इसलिये श्रवणत्व हेतु सत्प्रतिपक्षित हुआ ।

असिद्धस्त्रिविधः । आश्रयासिद्धः, स्वरूपासिद्धो, व्याप्यत्वासिद्धश्चेति ।

(प०) असिद्धं विभजते—असिद्ध इति । आश्रयासिद्धान्यतमत्वमसिद्धत्वम् ।

(हिन्दी) असिद्ध तीन प्रकार का है—आश्रयासिद्ध स्वरूपासिद्ध और व्याप्यत्वासिद्ध ।

आश्रयासिद्धो यथा—गगनारविन्दं सुरभि, अरविन्दत्वात् । सरोजारविन्दवत् । अत्र गगनारविन्दमाश्रयः, स च नास्त्येव ।

(न्या०) आश्रयासिद्ध इति । आश्रयासिद्धिर्नाम पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षाप्रसिद्धिः । यथेति । अत्रारविन्दे गगनीयत्वाभावे निश्चिते गगनीयत्वविशिष्टारविन्दे सौरभ्यानुमितिप्रतिबन्धः फलम् ।

(प०) आश्रयासिद्धत्वं च पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम् । भवति हि अरविन्दत्वे गगनीयत्वरूपपक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम्, अरविन्दरूपपक्षे गगनीयत्वविरहात् । ननु किमरविन्दे गगनीयत्वविरहोऽत आह—अत्रेति । उपदर्शितानुमान इत्यर्थः ।

(हिन्दी) आश्रयासिद्ध, जैसे—आकाशकमल सुगन्धिवाला है, उसमें अरविन्दत्व होने से तालाब के कमल की तरह, यहां आकाश कमलरूप आश्रय वस्तुतः असिद्ध हैं क्योंकि आकाश में कमल होता ही नहीं इसलिये यह आश्रयासिद्ध है ।

स्वरूपासिद्धो यथा । शब्दो गुणश्चाक्षुषत्वात्, रूपवत् । अत्र चाक्षुषत्वं शब्दे नास्ति शब्दस्य श्रावणत्वात् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(न्या०) स्वरूपासिद्ध इति। स्वरूपासिद्धर्नाम पक्षे हेत्वभावः। तथाच हेत्वभावविशिष्टपक्षज्ञानात्पक्षविशेष्यकहेतुप्रकारकपरामर्शानुपपत्त्या परामर्शप्रतिबन्धः फलम्।

(प०) पक्षे हेत्वभावः स्वरूपासिद्धिः। सद्धेत्वभावेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्षे इति। घटाद्यभाववारणाय हेत्विति। सोऽयं स्वरूपासिद्धः शुद्धासिद्ध-भागासिद्ध-विशेषणासिद्ध-विशेष्यासिद्धभेदेन चतुर्विधः। तत्राद्यस्तूपदर्शित एव। द्वितीयो यथा—उद्भूतरूपादिचतुष्टयं गुणः, रूपत्वादित्यत्र रूपत्वहेतोः पक्षैकदेशावृत्तित्वेन तस्य भागे स्वरूपासिद्धत्वम्। तृतीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः, रूपवत्त्वे सति स्पर्शवत्त्वादित्यत्र रूपवत्त्वविशेषणस्य वायाववृत्तेस्तद्विशिष्टस्पर्शवत्त्वस्यापि तथात्वेन तस्य स्वरूपासिद्धत्वं निर्वहति विशेषणाभावे विशिष्टास्याप्यभावात्। तुरियो यथा—अत्रैव विशेषणविशेष्यवैपरीत्येन हेतुः। तस्य स्वरूपासिद्धत्वं तु विषेष्याभावप्रयुक्तविशिष्टाभावादिति बोध्यम्।

(हिन्दी) स्वरूपासिद्ध, जैसे—शब्द गुण है, उसमें चाक्षुषत्व होने से, जैसे—रूप। शब्द में चाक्षुत्व नहीं है, क्योंकि शब्द का प्रत्यक्ष कर्णेन्द्रिय द्वारा होता है।

सोपाधिको हेतुर्व्याप्यत्वासिद्धः। साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः। साध्यसमनाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं साध्यव्यापकत्वम्। साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम्। यथा पर्वतो धूमवान् वह्निमत्त्वादित्यत्रार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। तथाहि यत्रधूमस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोग इति साध्यव्यापकत्वं। यत्र वह्निस्तत्रार्द्रेन्धनसंयोगो नास्ति अयोगोलके आर्द्रेन्धनसंयोगाभावादिति साधनाव्यापकत्वम्। एवं साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वादार्द्रेन्धनसंयोग उपाधिः। सोपाधिकत्वाद्वह्निमत्त्वं व्याप्यत्वासिद्धम्॥

(न्या०) व्याप्यत्वासिद्ध इति। प्रकृते धूमव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगे गृहीतं चेद्धूमे आर्द्रेन्धनसंयोगव्याप्यत्वं गृहीतम्। एवं वह्नेरव्यापकत्वमार्द्रेन्धनसंयोगे गृहीतं चेद्वह्नौ तदव्याप्यत्वं गृहीतम्। तदेव व्यभिचरितत्वम्। तथा चोपाधिव्यभिचरितत्वं साधनं गृहीतं चेदुपाधिभूतार्द्रेन्धन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

संयोगव्याप्यधूमव्यभिचारित्वं गृहीतमेव। अनुमानप्रकारश्च पूर्वानुमानहेतुं पक्षीकृत्य वह्निर्धूमव्यभिचारी, धूमव्यापकार्द्रेन्धनसंयोगव्यभिचारित्वात्, घटत्वादिवत्। यो यत्साध्यव्यापकव्यभिचारी स सर्वोऽपि साध्यव्यभिचारीति। एवंप्रकारेण प्रकृतानुमानहेतुभूते पक्षे साध्यव्यभिचारोत्थापकतया दूषकत्वमुपाधेः फलम्। तथाच धूमाभाववद्वृत्तित्वरूपधूमव्यभिचारे गृहीते वह्नौ धूमाभाववद्वृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः फलम्॥

(प०) व्यापत्वासिद्धं निरूपयति—सोपाधिक इति। ननु कोऽयमुपाधिरत आह—साध्येति। साधनाव्यापक उपाधिरित्युक्ते शब्दोऽनित्यः कृतकत्वादित्यत्र सामान्यवत्त्वे सत्यस्मदादिबाह्येन्द्रियग्रहणार्हत्वमप्युपाधिः स्यात्तदर्थं साध्यव्यापकत्वमुक्तम्। तावत्युक्ते सामान्यवत्त्वादिनाऽनित्यत्वसाधने कृतकत्वमुपाधिः। स्यात्तदर्थं साधनाव्यापकत्वमुक्तम्। उपाधिभेदमादायासंभववारणाय व्यापकत्वशरीरेऽप्यत्यन्तपदमादेयम्। साधनभेदमादाय साधनस्योपाधित्वावारणायाव्यापकशरीरेऽप्यत्यन्तपदमावश्यकं देयम्। सोऽयमुपाधिस्त्रिविधः—केवलसाध्यव्यापकः, पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः, साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकश्चेति। तत्राद्य उपदर्शितः। एवं क्रत्वन्तर्वर्तिनी हिंसा अधर्मजनिका हिंसात्वात्, क्रतुबाह्यहिंसावदित्यत्र निषिद्धत्वमुपाधिः तस्य यत्राधर्मजनकत्वं तत्र निषिद्धत्वमिति साध्यव्यापकतः। यत्र हिंसात्वं तत्र न निषिद्धमिति निषिद्धत्वमुपाधिः साधनाव्यापकः। क्रतुहिंसायां निषिद्धत्वस्याभावात्। न हिंस्यात्सर्वा भूतानि' इति सासान्यवाक्यतः 'पशुना यजेत' इत्यादिविशेषवाक्यस्य बलीयस्त्वात्। अतो हिंसात्वं नाधर्मजनकत्वे प्रयोजनकमपि तु निषिद्धत्वमेवेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम्। द्वितीयो यथा—वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्रोद्भूतरूपवत्त्वमुपाधिः। तस्य यत्र प्रत्यक्षत्वं तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति न केवलसाध्यव्यापकत्वं रूपे व्यभिचारात्। किंतु द्रव्यत्वलक्षणो यः पक्षधर्मस्तदवच्छिन्नबहिःप्रत्यक्षत्वं यत्र तत्रोद्भूतरूपवत्त्वमिति पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव। आत्मनि व्यभिचारवारणाय बहिःपदम्। यत्र प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वं तत्र नोद्भूतरूपवत्त्वमिति साधनाव्यापकत्वं च, वायावुद्भूतरूपविरहात्। तृतीयो यथा—ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यत्रभावत्वमुपाधिः। तस्य यत्र विनाशित्वं तत्र भावत्वमिति न केवलसाध्यव्यापकत्वं, प्रागभावे भावत्वविरहात्। किंतु जन्यत्वरूपसाधनावच्छिन्नविनाशित्वं यत्र तत्र भावत्वमिति साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव। यत्र जन्यत्वं तत्र भावत्वमिति साधनाऽव्यापकत्वं च,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्वंसे भावत्वविरहात्। एवं स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यत्र शाकपाकजन्यत्वमुपाधिः। श्यामत्वस्य नीलघटेऽपि सत्त्वान्न केवलसाध्यव्यापकत्वं, किंतु साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वमेव। अष्टमे पुत्रे शाकपाकजन्यत्वविरहेण साधनाऽव्यापकत्वं चेत्यादिकमपि द्रष्टव्यम्।

(हिन्दी) उपाधि सहित हेतुको व्याप्यत्वासिद्ध कहते हैं। जो साध्य व्यापक होकर साधन (हेतु) का अव्यापक रहे वह उपाधि है।

जो साध्य के अधिकरणमें रहनेवाले अभाव का प्रतियोगी न हो उसको साध्य-व्यापक कहते हैं और जो हेतु के अधिकरण में रहने वाले अभाव का प्रतियोगी हो उसको साधना व्यापक कहते हैं। जैसेः—पर्वत धूमवाला है, उसमें वह्नि होने से—यहां आर्द्रेन्धन संयोग (गीली लकड़ी का सम्बन्ध) उपाधि है। जैसे—जहां जहां धूम है वहां वहां आर्द्रेन्धन का संयोग है, इसलिये आर्द्रेन्धन संयोग साध्य धूम का व्यापक है और जहां जहां वह्नि है वहां वहां आर्द्रेन्धन संयोग नहीं है जैसे आगसे लाल लोहेके गोलेमें आर्द्रेन्धनसंयोग नहीं है, इस कारण वह उपाधि साधनका अव्यापक है। इसलिये साध्य का व्यापक होकर साधन (हेतु) का अव्यापक होनेसे आर्द्रेन्धनसंयोग उपाधि हुआ। उपाधि सहित होनेके कारण धूम साध्यक वन्हि हेतुक स्थलमें वन्हिरूप हेतु व्याप्यत्वासिद्ध है।

यस्य साध्याभावः प्रमाणान्तरेण निश्चितः स बाधितः। यथा वह्निरनुष्णो द्रव्यत्वादिति। अत्रानुष्णत्वं साध्यं तदभाव उष्णत्वं स्पर्शनप्रत्यक्षेण गृह्यते इति बाधितत्वम्।

(न्या०) यस्येति। यस्य हेतोः साध्यस्याभावः साध्याभावः। स च प्रमाणान्तरेण प्रत्यक्षादि प्रमाणेन निश्चितः स बाधित इत्यर्थः। तथाच प्रात्यक्षिकसाध्यबाधितनिश्चये जाते साध्यानुमितिप्रतिबन्धः फलम्। बाधितसाध्यकत्वाद्बाधितहेतुरित्युच्यते। इति न्यायबोधिन्यामनुमानपरिच्छेदः॥

(प०) यस्येति। सद्धेतुवारणाय प्रमाणान्तरेणेति। घटादिवारणाय साध्येति। इति पदकृत्यकेऽनुमानखण्डः॥

(हिन्दी) जिस हेतुके साध्यका अभाव अन्य प्रमाणसे निश्चित हो वह हेतु बाधित कहा जाता है। जैसे—वह्नि अनुष्ण है, उसमें द्रव्यत्व होनेसे। यहां अनुष्णत्वरूप साध्यका अभाव उष्णत्व प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है इसलिये द्रव्यत्व हेतु बाधित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपमानपरिच्छेदः ।

उपमितिकरणमुपमानम् । संज्ञासंज्ञिसंबन्धज्ञानमुपमितिः । तत्करणं सादृश्यज्ञानम् । तथाहि कश्चिद्गवयपदार्थमजानन् कुतश्चिदारण्यकपुरुषाद्गोसदृशो गवय इति श्रुत्वा वनं गतो वाक्यार्थं स्मरन्गोसदृशं पिण्डं पश्यति तदनन्तरमसौ गवयशब्दवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते ।

(न्या०) उपमानं लक्षयति—उपमितिकरणमिति । उपमितिं लक्षयति—संज्ञासंज्ञीति । संज्ञा नाम पदम् । संज्ञी अर्थः । तयोः संबन्धः शक्तिः । तथाच पदपदार्थसंबन्धज्ञानमुपमितिरित्यर्थः । उपमानं नामातिदेशवाक्यार्थज्ञानम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणं व्यापारः । उपमितिः फलम् । गोसदृशो गवयपदवाच्यः इत्याकारकवाक्याद्गोसादृश्यावच्छिन्नविशेष्यकगवयपदवाच्यत्वप्रकारकं यज्ज्ञानं जायते तदेव करणम् । इति न्यायबोधिन्यामुपमानपरिच्छेदः ।

(प०) अवसरसंगतिमभिप्रेत्यानुमानानन्तरमुपमानं निरूपयति—उपमिति । उपमितेः करणमुपमानमित्यर्थः । कुठारादिवारणाय मितीति । प्रत्यक्षादिवारणाय उपेति । संज्ञासंज्ञीति । अनुमित्यादिवारणाय संबन्धेति । संयोगादिवारणाय संज्ञासंज्ञीति । असौ गवयपदवाच्य इति । अभिप्रेतो गवयपदवाच्य इत्यर्थः । तेन गवयान्तरे शक्तिग्रहाभावप्रसंग इति दूषणमपास्तम् । तथाच गोसादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानं करणम् । अतिदेशवाक्यार्थस्मरणमवान्तरव्यापारः । उपमितिः फलमिति सारम् । तच्चोपमानं त्रिविधं सादृश्यविशिष्टपिण्डज्ञानमसाधरणधर्मविशिष्टपिण्डज्ञानं, वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानंञ्च । तत्राद्यमुक्तमेव । द्वितीयं यथा—खड्गमृगः कीदृगिति पृष्टे नासिकालसदेकशृङ्गोऽनतिक्रान्तगजाकृतिश्चेति तज्ज्ञातृभ्यः श्रुत्वा कालान्तरे तादृशं पिण्डं पश्यन्नतिदेशवाक्यार्थं स्मरति तदनन्तरं खड्गमृगपदवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते । अत्र नासिकालसदेकशृङ्ग एवासाधारणधर्मः । तृतीयं यथा—उष्ट्रः कीदृगिति पृष्टे अश्वादिवदसमानपृष्ठो न ह्रस्वग्रीवशरीरश्चेति आप्तोक्ते कालान्तरे तत्पिण्डदर्शनाद्वैधर्म्यविशिष्टपिण्डज्ञानं ततोऽतिदेशवाक्यार्थस्मरणं तत उष्ट्र उष्ट्रपदवाच्य इत्युपमितिरुत्पद्यते । इति पदकृत्यके उपमानखण्डः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(हिन्दी) उपमिति के करणको उपमान कहते हैं। संज्ञा (पद) और संज्ञि (पदार्थ) के सम्बन्ध के ज्ञानको अर्थात् वाच्यवाचक रूप सम्बन्ध ज्ञानको उपमिति कहते हैं। इसका करण (कारण) सादृश्य ज्ञान है जैसे:—कोई मनुष्य जो गवय शद्वके अर्थको नहीं जानता है, वह जंगलमें रहने वाले किसी "वनचर" से "गाय के समान गवय होता है" इस बातको सुनकर जंगल गया और वहां जाकर "गायके समान गवय होता है" इस वाक्यके अर्थको स्मरण करता हुआ गायके समान पिण्ड (एक पशु) को देखा उसके बाद यह गवय शब्द वाच्य है " ऐसी उमिति उसको होती है।

शब्दपरिच्छेदः।

आप्तवाक्यं शब्दः। आप्तस्तु यथार्थवक्ता। वाक्यं पदसमूहः। यथा गामानयेति। शक्तं पदम्। अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसंकेतः शक्तिः।

(न्या०) [शब्दं लक्षयति—आप्तेति। आप्तोच्चरितत्वे सति वाक्यत्वं शब्दस्य लक्षणम्। प्रमाणशब्दत्वं लक्ष्यतावच्छेदकम्। वाक्यत्वमात्रोक्तावनाप्तोच्चरितवाक्येऽतिव्याप्तिरत आप्तोच्चरितत्वनिवेशः। तावन्मात्रोक्तौ जबगडदशादावतिव्याप्तिरतो वाक्यत्वम्। आप्तत्वं च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानवत्त्वम् तथा च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानजन्यशब्दत्वमिति पर्यवसन्नोऽर्थः। वस्तुतस्तु] पदज्ञानं करणम् वृत्तिज्ञानसहकृतपदज्ञानजन्यपदार्थोपस्थितिर्व्यापारः। वाक्यार्थज्ञानं शब्दबोधः फलम्। वृत्तिर्नाम शक्तिलक्षणान्यतररूपा। शक्तिर्नाम घटादिविशेष्यकघटादिपदजन्यबोधविषयत्वप्रकारक ईश्वरसंकेतः। ईश्वरसंकेतो नाम ईश्वरेच्छा। सैव शक्तिरित्यर्थः। शक्तिनिरूपकत्वमेव पदे शक्तत्वम्। विषयतासंबन्धेन शक्त्याश्रयत्वं शक्यत्वम्। शक्यसंबन्धो लक्षणा। सा द्विविधा गौणी, शुद्धा चेति। गौणी नाम सादृश्यविशिष्टे लक्षणा। यथा सिंहो माणवक इत्यादौ सिंहपदस्य सिंहसादृश्यविशिष्टे लक्षणा। शुद्धा द्विविधा। जहल्लक्षणा,अजहल्लक्षणा चेति। लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यमात्रबोधप्रयोजिका लक्षणा जहल्लक्षणा। यथा गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदवाच्यप्रवा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हसंबन्धस्य तीरे सत्त्वात्तादृशशक्यसंबन्धरूपलक्षणाज्ञानाद्गङ्गापदात्तीरोपस्थितिः । लक्ष्यतावच्छेदकरूपेण लक्ष्यशक्योभयबोधप्रयोजिका लक्षणा अजहल्लक्षणा । यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यत्र काकपदस्य दध्युपघातके लक्षणा । लक्ष्यतावच्छेदकं दध्युपघातकत्वम् । तेन रूपेण दध्युपघातकानां सर्वेषां काकबिडालकुक्कुटसारमेयादीनां शक्यलक्ष्याणां सर्वेषां बोधात् । जहदजहल्लक्षणा वेदान्तिनां मते । [साच शक्यतावच्छेदकपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधप्रयोजिका यथा तत्त्वमसीत्यत्र सर्वज्ञत्वकिंचिज्ज्ञत्वपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधनात्]

(प०) अवसरसंगतिमभिप्रेत्योपमानानन्तरं शब्दं निरूपयति—आप्तेति । शब्द इति । शब्दप्रमाणमित्यर्थः । भ्रान्तविलम्भकयोर्वाक्यस्य शब्दप्रमाणत्ववारणाय आप्तेति । ननु कोऽयमाप्त इत्यत आह—आप्तस्त्विति । यथार्थवक्ता यथाभूतावाधितार्थोपदेष्टा । वाक्यं लक्षयति—वाक्यमिति । घटादिसमूहवारणाय पदेति । शक्तमिति । निरूपकतासंबन्धेन शक्तिविशिष्टमित्यर्थः । अस्मादिति । घटपदाद्घटरूपोऽर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छैव शक्तिरित्यर्थः । अर्थस्मृत्यनुकूलपदपदार्थसंबन्धत्वं तल्लक्षणम् । शक्तिरिव लक्षणापि पदवृत्तिः । अथ केयं लक्षणा ? शक्यसंबन्धो लक्षणा । सा च त्रिधा । जहत्—अजहत्—जहदजहद्भेदात् वर्तते च गङ्गायां घोष इत्यत्र गङ्गापदशक्यप्रवाहसंबन्धस्तीरे । लक्षणाबीजं च तात्पर्यानुपपत्तिः । अत एव प्रवाहे घोषतात्पर्यानुपपत्तेस्तीरे लक्षणा सेत्स्यति । छत्रिणो यान्तीत्यादौ द्वितीया । सोऽयमश्व इत्यादौ तृतीया ।

(हिन्दी) आप्त पुरुष का ही वाक्य शब्द प्रमाण है । सच्ची बात कहने वाले व्यक्ति को आप्त कहते हैं । पदों के समूह को वाक्य कहते हैं । जैसे:—"गाय लाओ" । जिसमें शक्ति रहे उसे पद कहते हैं । इस पद से इस अर्थ को जानना—यह जो ईश्वर संकेत है, इसी को शक्ति कहते हैं ।

आकाङ्क्षा योग्यता संन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः । पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वमाकाङ्क्षा । अर्थाऽबाधो योग्यता । पदानामविलम्बेनोच्चारणं संनिधिः । तथाच आकाङ्क्षादिरहितं वाक्यमप्रमाणम् । यथा गौरश्वः पुरुषो हस्तीति न प्रमाणम् आकाङ्क्षाविरहात् । वह्निना सिञ्चेदिति न प्रमाणं योग्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताविरहात्। प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि गामानयेत्यादिपदानि न प्रमाणं सांनिध्याभावात्।

(न्या०) आकाङ्क्षां लक्षयति—पदस्येति। अव्यवहितोत्तरत्वादिसंबन्धेन यत्पदे यत्पदप्रकारकज्ञानव्यतिरेकप्रयुक्तो यादृशशाब्दबोधाभावस्तादृशशाब्दबोधे तत्पदे तत्पदवत्त्वमाकाङ्क्षा। यथा घटमित्यादिस्थलेऽव्यवहितोत्तरत्वादिसंबन्धेनाम् पदं घटपदवदित्याकारकाम्पदविशेष्यकघटपदप्रकारकज्ञानसत्त्वे घटीयं कर्मत्वमिति बोधो जायते। अम् घट इति विपरीतोच्चारणे तु तादृशज्ञानाभावात्तादृशशाब्दबोधो न जायते। अतस्तादृशाकाङ्क्षाज्ञानं शाब्दबोधे कारणम्। अर्थाबाध इति। बाधाभावो योग्यतेत्यर्थः। अग्निना सिञ्चेदित्यत्र सेककरणत्वस्य जलादिधर्मस्य वह्नौ बाधनिश्चयसत्त्वान्न तादृशवाक्याच्छाब्दबोधः। संनिधिं निरूपयति—पदानामिति। असहोच्चारितानि विलम्बोच्चारितानि।

(प०) असंभववारणाय पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्त इति। पुनरसंभववारणाय पदान्तरेति। अर्थेति। आकाङ्क्षावारणाय अर्थेति। पदानामिति। असहोच्चारितेष्वतिव्याप्तिवारणाय अविलम्बेनेति। आकाङ्क्षावारणाय पदानामिति। आकाङ्क्षादिशून्यवाक्यस्यात्र प्रमाणत्वं निषेधयति—तथा चेति। आकाङ्क्षादिकं शाब्दहेतुरित्युक्ते चेत्यर्थः। अनाकाङ्क्षाद्युदाहरणं—यथेति।

(हिन्दी) आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि का ज्ञान वाक्य के अर्थ को जानने में कारण है। दूसरे पद के न रहने से एक पद का जो अन्वयबोधाजनकत्व (शाब्दबोधाजनकता) है उसको आकांक्षा कहते हैं। एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के सम्बन्ध का जो रहना उसे योग्यता कहते हैं। पदों का विलम्बके बिना जो उच्चारण उसको सन्निधि कहते हैं। इसलिये आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि रहित वाक्य प्रमाण नहीं होता। जैसेः—"गाय, घोड़ा, पुरुष और हाथी" यह वाक्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि इसमें परस्पर आकांक्षा नहीं है। वन्हि से सींचो, यह भी वाक्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि वन्हि में सींचने की योग्यता नहीं है। एक एक प्रहर के बाद पृथक् पृथक् उच्चारण किये गये "गौको" "लाओ" आदि पद भी प्रमाण नहीं है, क्योंकि इनमें सन्निधि नहीं है।

वाक्यं द्विविधम्। वैदिकं लौकिकं च। वैदिकमीश्वरोक्तत्वात्सर्वमेव प्रमाणम्। लौकिकं त्वाप्तोक्तं प्रमाणम्। अन्यदप्रमाणम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(न्या०) वैदिकमिति । वेदवाक्यमित्यर्थः । इदमुपलक्षणम् । वेदमूलकस्मृत्यादीन्यपि ग्राह्याणि । लौकिकं त्विति । वेदवाक्यभिन्नमित्यर्थः । आप्तत्वं च प्रयोगहेतुभूतयथार्थज्ञानवत्त्वम् । इति न्यायबोधिन्यां शब्दपरिच्छेदः ।

(हिन्दी) वाक्य दो प्रकार के हैं, वैदिक और लौकिक । वैदिक वाक्य ईश्वर कथित है, इसलिये वे सभी प्रमाण हैं । लौकिक वाक्यों में जो आप्त पुरुषों के द्वारा कहे गये हों वे ही प्रमाण हैं और आप्त पुरुष से इतर पुरुषों द्वारा कहे गये सभी अप्रमाण हैं ।

वाक्यार्थज्ञानं शब्दज्ञानम् । तत्करणं शब्दः ।

(प०) नन्वेतावता शाब्दसामग्री प्रपञ्चिता । प्रमाविभाजकवाक्ये शाब्दस्याप्युद्दिष्टत्वेन तत्कुतो न प्रदर्शितमित्यत आह—वाक्यार्थेति । शाब्दत्वं च शब्दात्प्रत्येमीत्यनुभवसिद्धा जातिः । शाब्दबोधक्रमो यथा—चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यत्र ग्रामकर्मकगमनानुकूलवर्तमानकृतिमांश्चैत्र इति शाब्दबोधः । द्वितीयायाः कर्मत्वमर्थः । धातोर्गमनम् । अनुकूलत्वं च संसर्गमर्यादया भासते । लटो वर्तमानत्वमाख्यातस्य कृतिः । तत्संबन्धः संसर्गमर्यादया भासते । रथो गच्छतीत्यत्र गमनानुकूलव्यापारवान् रथ इति शाब्दबोधः । स्नात्वा गच्छतीत्यत्र गमनप्रागभावावच्छिन्नकालीनस्नानकर्ता गमनानुकूलवर्तमानकृतिमानिति शाब्दबोधः । क्त्वाप्रत्ययस्य कर्ता पूर्वकालीनत्वं चार्थः । एवमन्यत्रापि वाक्यार्थो बोध्यः ।

इति पदकृत्ये शब्दपरिच्छेदः ।

(हिन्दी) वाक्य के अर्थ का ज्ञान ही शाब्द ज्ञान है । उसका करण शब्द है ।

अयथार्थानुभवस्त्रिविधः । संशयविपर्ययतर्कभेदात् । एकस्मिन्धर्मिणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं संशयः । यथा स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ।

(न्या०) यथार्थानुभवं निरूप्यायथार्थानुभवं विभजते—संशयेत्यादिना । एकेति । एकधर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितभावाभावप्रकारकज्ञानं संशय इत्यर्थः । भावद्वयकोटिकसंशयप्रसिद्धेः स्थाणुर्वेत्यत्र स्थाणुत्वस्थाणुत्वाभावपुरुषत्वाभावकोटिक एव ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(प०) अयथार्थानुभवं विभजते—अयथार्थेति। संशयं लक्षयति—एकस्मिन्निति। एकस्मिन्धर्मिणि एकस्मिन्नेव पुरोवर्तिनि पदार्थे विरुद्धा व्यधिकरणा ये नानाधर्माः स्थाणुत्वपुरुषत्वादयस्तेषां वैशिष्ट्यं संबन्धः, तदवगाहि ज्ञानं संशय इत्यर्थः। घटपटाविति समूहालम्बनज्ञानस्य घटत्व-पटत्वरूपविरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसक्तिवारणाय एक-स्मिन्निति। घटः पृथिवीति ज्ञानस्यैकस्मिन्धर्मिणि घटे घटत्वपृथिवीत्व-रूपनानाधर्मवैशिष्ट्यावगाहित्वादतिप्रसङ्गवारणाय विरुद्धेति। पटत्वविरुद्ध-घटत्ववान् पट इति ज्ञानेऽतिप्रसक्तिवारणाय नानेति।

(हिन्दी) अयथार्थानुभव तीन प्रकार का है, संशय, विपर्यय और तर्क भेद से। एक धर्मी (विशेष्य) में परस्पर विरुद्ध अनेक धर्मों के ज्ञान को संशय कहते हैं। जैसे—जङ्गल में दूर से ठूठे पेड़ को देख कर किसी मनुष्य को 'यह ठूठा पेड़ है या मनुष्य' इस प्रकारका ज्ञान।

मिथ्याज्ञानं विपर्ययः। यथा शुक्तौ 'रजतम्' इति।

(प०) मिथ्येति। यथार्थज्ञानवारणाय मिथ्येति। अयथार्थवारणाय ज्ञानेति।

(हिन्दी) झूठे ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। जैसेः—सीप में "यह चान्दी है" इस तरह का ज्ञान।

व्याप्यारोपेण व्यापकारोपस्तर्कः। यथा यदि वह्निर्न स्यात्तर्हि धूमोऽपि न स्यादिति।

(न्या०) व्याप्यारोपेणेति। तर्के व्याप्यस्य व्यापकस्य च बाधनिश्चयः कारणम्। अन्यथा बाधनिश्चयाभाव इष्टापत्तिदोषेण तर्कानुत्पत्तेः।

(प०) तर्कं लक्षयति—व्याप्यारोपेणेति। असंभववारणाय व्याप्यारो-पेणेति। पुनरसंभववारणाय व्यापकारोप इति। अत्र वह्न्यभावो व्याप्यः। धूमाभावो व्यापकः। यद्यपि तर्कस्य विपर्ययात्मकत्वेन पृथग्विभा-गोऽनुचितस्तथापि प्रमाणानुग्राहकत्वात् स उदित इति बोध्यम्। स्वप्नस्तु पुरीतद्बहिर्देशान्तर्देशयोः संधौ इडानाड्यां वा मनसि स्थितेऽ-दृष्टविशेषेण धातुदोषेण वा जन्यते। स च मानसविपर्ययान्तर्भूतः।

(हिन्दी) व्याप्य के आरोप (झूठे ज्ञान) से व्यापकका आरोप (झूठा ज्ञान) करना तर्क कहा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मृतिरपि द्विविधा । यथार्था अयथार्था च । प्रमाजन्या यथार्था । अप्रमाजन्या अयथार्था । सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम् ।

(न्या०) सुखं निरूपयति—सर्वेषामिति । इतरेच्छाऽनधीनेच्छाविषयत्वमिति निष्कर्षः । यथाश्रुते अनुकूलत्वप्रकारकवेदनाविशेष्यत्वस्य घटोऽनुकूल इत्याकारकज्ञानदशायामनुकूलत्वप्रकारकज्ञानविशेष्यत्वस्य घटादावपि सत्त्वाद्घटादावतिव्याप्तिरिति निष्कृष्टलक्षणमुक्तम् । भोजनादावतिव्याप्तिवारणाय इतरेच्छानधीनेतीच्छाविशेषणम् । सुखेच्छायाः सुखत्वप्रकारकज्ञानमात्रजन्यत्वात् ।

(प०) सुखं निरूपयति—सर्वेषामिति । सर्वात्मनानुकूलमिति वेद्यं यत्तत्सुखमित्यर्थः । अहं सुखीत्यनुभवसिद्धसुखत्वजातिमत्, धर्ममात्रासाधारणकारणो गुणो वा सुखम् । शत्रुदुःखवारणाय सर्वेषामिति ।

(हिन्दी) स्मृति दो प्रकार की है—यथार्थ और अयथार्थ । सच्चे ज्ञान से उत्पन्न स्मृति को यथार्थ स्मृति कहते हैं और झूठे ज्ञान से उत्पन्न स्मृति को अयथार्थ स्मृति कहते हैं । जो सभी को अनुकूल (प्रिय) मालूम पड़े उसको सुख कहते हैं ।

प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् ।

(न्या०) दुःखं निरूपयति—प्रतिकूलेति । अत्रापीतरद्वेषानधीनद्वेषविषयत्वमिति निष्कृष्टलक्षणम् । द्वेषविषयत्वमात्रोक्तौ सर्पादावतिव्याप्तिस्तत्रापि द्वेषविषयत्वसत्त्वादतस्तत्रातिव्याप्तिवारणायेतरद्वेषानधीनेति द्वेषविशेषणम् । सर्पजन्यदुःखादौ द्वेषात्सर्पेऽपि द्वेष इति सर्पद्वेषस्य सर्पजन्यदुःखद्वेषजन्यत्वादन्यद्वेषाजन्यविषयत्वरूपदुःखलक्षणस्य सर्पादौ नातिव्याप्तिः । फलेच्छा उपायेच्छां प्रति कारणम् । अतः फलेच्छावशादुपायेच्छा भवति । एवं फले द्वेषादुपाये द्वेषः ।

(प०) प्रतिकूलेति । दुःखत्वजातिमत्, अधर्ममात्रासाधारणकारणो गुणो वा दुःखम् । पदकृत्यं पूर्ववत् ।

(हिन्दी) जो सभी को प्रतिकूल (बुरा) मालूम पड़े उसको दुःख कहते हैं ।

इच्छा कामः । क्रोधो द्वेषः । कृतिः प्रयत्नः ।

(प०) इच्छां निरूपयति—इच्छेति । काम इति पर्यायः । इच्छात्व-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातिमती इच्छा। सा द्विविधा—फलेच्छा उपायेच्छा च। फलं सुखादिकम्। उपायो वागादिः। द्वेषं निरूपयति—क्रोध इति। द्वेष्टीत्यनुभवसिद्धद्वेषत्वजातिमान् द्विष्टसाधनताज्ञानजन्यगुणो वा द्वेषः। प्रयत्नं निरूपयति—कृतिरिति। प्रयत्नत्वजातिमान्प्रयत्नः। स त्रिविधः प्रवृत्तिनिवृत्तिजीवनयोनिभेदात्। इच्छाजन्यो गुणः प्रवृत्तिः। द्वेषजन्यो गुणो निवृत्तिः। जीवनादृष्टजन्यो गुणो जीवनयोनिः। स च प्राणसंचारकारणम्।

(हिन्दी) कामना को इच्छा कहते हैं, द्वेष को क्रोध कहते हैं, प्रयत्न को कृति कहते हैं।

विहितकर्मजन्यो धर्मः। निषिद्धकर्मजन्यस्त्वधर्मः।

(न्या०) धर्माधर्मौ निरूपयति—विहितेति। वेदविहितेत्यर्थः। निषिद्धेति। वेदनिषिद्धेत्यर्थः।

(प०) धर्ममाह—विहितेति। वेदविहितेत्यर्थः। अधर्मवारणाय वेदविहितेति। यागादिक्रियावारणाय कर्मजन्य इति। स च कर्मनाशाजलस्पर्शकीर्तनभोगतत्त्वज्ञानादिना नश्यति। अधर्मलक्षणमाह—निषिद्धेति। वेदेनेत्यर्थः। धर्मवारणाय वेदनिषिद्धेति। निषिद्धक्रियावारणाय कर्मजन्य इति। स च भोगप्रायश्चित्तादिना नश्यति। एतावेव अदृष्टमिति कथ्यते। वासनाजन्यौ च। वासना च विलक्षणसंस्कारः।

(हिन्दी) वेद विहित कर्म से उत्पन्न अदृष्ट को धर्म कहते हैं। निषिद्ध कर्म से उत्पन्न अदृष्ट को अधर्म कहते हैं।

बुद्ध्यादयोऽष्टावात्ममात्रविशेषगुणाः। बुद्धीच्छाप्रयत्ना नित्या अनित्याश्च। नित्या ईश्वरस्य। अनित्या जीवस्य।

(न्या०) बुद्ध्यादयोऽष्टाविति। बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मा इत्यर्थः।

(हिन्दी) बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म और अधर्म ये आठ आत्मा के विशेष गुण हैं। इनमें बुद्धि, इच्छा और प्रयत्न नित्य भी हैं और अनित्य भी हैं। ईश्वरीय बुद्धि, ईश्वरीय इच्छा और ईश्वरीय प्रयत्न नित्य हैं। जीव की बुद्धि जीव की इच्छा और जीव का प्रयत्न अनित्य है।

संस्कारस्त्रिविधः। वेगो भावना स्थितिस्थापकश्चेति। वेगः पृथिव्यादिचतुष्टयमनोवृत्तिः। अनुभवजन्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्मृतिहेतुर्भावना आत्ममात्रवृत्तिः । अन्यथाकृतस्य पुनस्तदवस्थापादकः स्थितिस्थापकः । कटादिपृथिवीवृत्तिः । इति गुणाः ।

(न्या०) संस्कारं विभजते—संस्कार इति । भावनां लक्षयति—अनुभवेति । अनुभवजन्यत्वे सति स्मृतिहेतुत्वं भावनाया लक्षणम् । अत्रानुभवजन्यत्वे सतीति विशेषणानुपादाने आत्ममनःसंयोगेऽतिव्याप्तिरात्ममनःसंयोगस्य ज्ञानमात्रं प्रत्यसमवायिकरणत्वेन स्मृतिं प्रत्यपि कारणत्वादतस्तदुपादानम् । आत्ममनःसंयोगस्यानुभवजन्यत्वाभावान्नातिव्याप्तिः । तावन्मात्रे कृतेऽनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिः । ध्वंसं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वेनानुभवध्वंसस्याप्यनुभवजन्यत्वात् । अतः स्मृतिहेतुत्वोपादानम् । अनुभवध्वंसे स्मृतिहेतुत्वाभावान्नातिव्याप्तिः । [ननु विशिष्टबुद्धिं प्रति विशेषणज्ञानस्य कारणता सकलतान्त्रिकमतसिद्धा । यथा दण्डविशिष्टबुद्धिं प्रति दण्डज्ञानस्य । दण्डविशिष्टबुद्धिर्नाम दण्डप्रकारकबुद्धिः । सा च दण्डी पुरुष इत्याकारिका । नहि दण्डमजानानः 'दण्डी पुरुषः' इति प्रत्येति । एवं च यत्रायं दण्ड इति प्रत्यक्षं जातं तदनन्तरं दण्डी पुरुष इत्याकारकप्रत्यक्षमुत्पन्नं तत्र दण्डी पुरुष इत्याकारकप्रत्यक्षेऽतिव्याप्तिः । तद्धि स्वाव्यवहितपूर्वक्षणोत्पन्नदण्डज्ञानात्मकानुभवजन्यं, जनिष्यमाणे दण्डी पुरुष इत्याकारकस्मरणे कारणं च, स्मृतिं प्रत्यनुभवस्य कारणत्वादिति चेत्, अत्र ब्रूमः—अनुभवजन्यत्वं हि अनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वम् । तथा च दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितदण्डज्ञाननिष्ठकारणतायां न दण्डानुभवत्वमवच्छेदकं दण्डानुभवादिव दण्डस्मरणादपि दण्डप्रकारकबुद्धेरुत्पत्तेः । अतो दण्डप्रकारकबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति स्मरणसाधारणदण्डज्ञानत्वेनैव दण्डज्ञानस्य कारणतायाः स्वीकरणीयत्वेनानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वस्योक्तप्रत्यक्षेऽभावान्नातिव्याप्तिः भावनायां तु लक्षणमिदं वर्तते । तथाहि—अनुभवेनैव भावनाख्यसंस्कारोत्पत्त्या भावनात्वावच्छिन्नं प्रत्यनुभवस्यानुभवत्वेनैव कारणतया भावनात्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितानुभवनिष्ठकारणतायामनुभवत्वमवच्छेदकम् । अतोऽनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वं भावनायां वर्तत इति नासम्भवः । नन्वेवं स्मृतिहेतुत्वविशेषणवैयर्थ्यम्, तद्धयनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिवारणाय प्रागुपात्तम् । नहि यथोक्तानुभवजन्यत्वविवक्षायामनुभवध्वंसेऽतिव्याप्तिः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसज्यते। तथाहि—ध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति प्रतियोगिनः कारणत्वं प्रतियोगित्वेन रूपेण, तत्तद्ध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति च तत्तत्प्रतियोगिव्यक्तेस्तद्व्यक्तित्वेनेत्येवं ध्वंसप्रतियोगिनोः कार्यकारणभावः। तथा च ध्वंसनिष्ठकार्यतानिरूपिता यानुभवनिष्ठा कारणता तस्यां प्रतियोगित्वमवच्छेदकं तत्तद्व्यक्तित्वं च, न त्वनुभवत्वमपीत्यनुभवध्वंसेऽनुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वरूपानुभवजन्यत्वविरहहेणैवाऽतिव्याप्तिवारणसम्भवात्कृतं स्मृतिहेतुत्वविशेषणेनेति चेत्, न, स्मृतावतिव्याप्तिवारणायैव तदुपादानात्। तथाहि—स्मृतिं प्रत्यनुभव एव कारणं न तु स्मृतिरप्यतो घटस्मृतित्वावच्छिन्नं प्रति घटानुभवस्य घटानुभवत्वेनैव कारणत्वं न तु घटज्ञानत्वेन। इत्थंचानुभवत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताश्रयत्वस्य स्मृतौ विद्यमानत्वादतिव्याप्तिः। उक्तविशेषणदाने तु स्मृतेः स्मृतिहेतुत्वाभावात्तद्व्युदासः।]

(प०) संस्कारं विभजते—संस्कारेति। सामान्यगुणात्मविशेषगुणोभयवृत्तिगुणत्वव्याप्यजातिमान्संस्कारः। घटादिवारणाय गुणत्वव्याप्येति। संयोगादिवारणाय आत्मविशेषगुणोभयवृत्तीति। ज्ञानादिवारणाय सामान्येति। द्वितीयादिपतनासमवायिकरणं वेगः। रूपादिवारणाय द्वितीयादिपतनेति। कालादिवारणाय असमवायीति। भावनां लक्षयति—अनुभवेति। आत्मादिवारणाय प्रथमदलम्। अनुभवध्वंसवारणाय द्वितीयदलम्। स्थितिस्थापकमाह—अन्यथेति। पृथिवीमात्रसमवेतसंस्कारत्वव्याप्यजातिमत्त्वं स्थितिस्थापकत्वम्। गन्धवत्त्वमादाय गन्धेऽतिव्याप्तिवारणाय संस्कारत्वव्याप्येति। भावनात्वमादाय भावनावारणाय पृथिवीसमवेतेति। स्थितिस्थापकरूपान्यतरत्वमादाय रूपवारणाय जातीति। इति गुणा इति। द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् गुणः। द्रव्यकर्मणोरतिव्याप्तिवारणाय विशेषणदलम्। सामान्यादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलम्।

(हिन्दी) संस्कार तीन प्रकार का है—वेग, भावना और स्थितिस्थापक। वेग—पृथिवी, जल, तेज, वायू और मनमें रहता है। अनुभव से उत्पन्न होनेवाली—और स्मरण को पैदा करने वाली—को भावना कहते हैं। यह केवल आत्मा में ही रहती है।

अवस्थान्तर में प्राप्त हुई वस्तु को पुनः पूर्वावस्था में प्राप्त कराने वाला जो संस्कार उसे स्थिति स्थापक कहते हैं। यह केवल चटाई आदि पृथिवी मात्र में रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलनात्मकं कर्म । ऊर्ध्वदेशसंयोगहेतुरुत्क्षेपणम् । अधोदेशसंयोगहेतुरपक्षेपणम् । शरीरस्य संनिकृष्टसंयोगहेतुराकुञ्चनम् । विप्रकृष्टसंयोगहेतुः प्रसारणम् । अन्यत्सर्वं गमनम् ।

(प०) चलनेति । संयोगभिन्नत्वे सति संयोगासमवायिकारणं कर्म । हस्तपुस्तकवारणाय सत्यन्तम् । घटादिवारणाय विशेष्यदलम् । ऊर्ध्वेति । अपक्षेपणवारणाय ऊर्ध्वेति । कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि बोध्यम् । अधोदेशेति । उत्क्षेपणवारणाय अधोदेशेति । कालादिवारणाय असाधारणेत्यपि देयम् । शरीरेति । प्रसारणादिवारणाय शरीरसंनिकृष्टेति । कालादिवारणाय असाधारणं देयम् । विप्रकृष्टेति । उत्क्षेपणादिवारणाय विप्रकृष्टेति । कालादिवारणाय असाधारणमप्यावश्यकम् ।

(हिन्दी) "चलना" आदि क्रिया को कर्म कहते हैं । ऊपर के देश में संयोग होने के कारण को उत्क्षेपण कहते हैं । नीचे के देश में संयोग होने के कारण को अपक्षेपण कहते हैं । शरीर के निकटस्थ देशके संयोग के कारण को आकुञ्चन (समटेना) कहते हैं । शरीर के दूर देश के संयोग के कारण को प्रसारण (फैलाना) कहते हैं । इनसे भिन्न जो कर्म हैं, सभी गमन हैं अर्थात् उनका गमन क्रिया में ही अन्तर्भाव है ।

नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम् । द्रव्यगुणकर्मवृत्ति । परं सत्ता । अपरं द्रव्यत्वादि ।

(न्या०) सामान्यं निरूपयति—नित्यमेकमिति । नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वं सामान्यलक्षणम् । नित्यत्वविशेषणानुपादानेऽनेकसमवेतत्वस्य संयोगादौ सत्त्वात्तत्रातिव्याप्तिस्तद्वारणाय नित्यत्वविशेषणम् । अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वमात्रोपादाने आकाशादावतिव्याप्तिस्तद्वारणायानेकसमवेतत्वम् । अनेकसमवेतत्वानुपादाने नित्यत्वविशिष्टसमवेतत्वमात्रोक्तावाकाशगतैकत्वपरिमाणादौ जलपरमाणुगतरूपादौ चातिव्याप्तिः , जलपरमाणुगतरूपादेराकाशगतैकत्वपरिमाणादेर्नित्यत्वात् समवेतत्वाच्च । अत अनेकेति समवेतविशेषणम् ।

(प०) नित्यमिति । संयोगादिवारणाय नित्यमिति । कालादिपरिमाणवारणाय अनेकेति । अनेकानुगतत्वं च समवायेन बोध्यम् । तेन नात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तिः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(हिन्दी) जो नित्य होकर अनेक पदार्थों में रहने वाला हो उसे सामान्य कहते हैं। यह द्रव्य, गुण और कर्म में रहता है।

सत्ता जाति पर (अधिक देश में रहने वाली) है और द्रव्यत्व आदि जाति अपर (न्यून देश में रहने वाली) है।

नित्यद्रव्यवृत्तयो व्यावर्तका विशेषाः।

(प०) नित्यद्रव्यवृत्तय इति। घटत्वादिवारणाय नित्यद्रव्यवृत्तय इति। आत्मत्वमनस्त्ववारणाय आत्मत्वमनस्त्वभिन्ना इत्यपि बोध्यम्।

(हिन्दी) नित्य द्रव्यों में रह कर दूसरो को व्यावृत्त करने वाले को विशेष कहते हैं।

नित्यसंबन्धः समवायः। अयुतसिद्धवृत्तिः। ययोर्द्वयोर्मध्य एकमविनश्यदवस्थमपराश्रितमेवावतिष्ठते तावयुतसिद्धौ। यथा अवयवावयविनौ गुणगुणिनौ क्रियाक्रियावन्तौ जातिव्यक्ती विशेषनित्यद्रव्ये चेति।

(न्या०) समवायं निरूपयति—नित्येति। संबन्धत्वं विशिष्टप्रतीतिनियामकत्वम्। तावन्मात्रोक्तौ सयोगेऽतिव्याप्तिरतो नित्य इति विशेषणम्। (ययोर्द्वयोर्मध्य इति। यन्निष्ठकालनिरूपिताधेयतासामान्यं यदवच्छिन्नं तदुभयान्यतरत्वमयुतसिद्धत्वमित्यर्थः।)

(प०) नित्येति। आकाशादिवारणाय संबन्ध इति। संयोगवारणाय नित्येति। स्वरूपसंबन्धवारणाय तद्भिन्न इत्यपि बोध्यम्।

(हिन्दी) नित्य सम्बन्ध को समवाय सम्बन्ध कहते हैं। वह अयुत सिद्ध पदार्थों में रहता है। जहां कहीं दो पदार्थों में से एक पदार्थ जब तक नष्ट नहीं होता और दूसरे के बिना नहीं रह सकता वहां उन दोनों को अयुतसिद्ध कहते हैं। जैसे—अवयव और अवयवी, गुण और गुणी, क्रिया और क्रियावान् (द्रव्य) जाति और व्यक्ति, विशेश और नित्य द्रव्य।

अनादिः सान्तः प्रागभावः। उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य।

(प०) प्रागभावं लक्षयति—अनादिरिति। घटादिवारणाय प्रथमदलम्। परमाणुवारणाय द्वितीयदलम्। पुनः प्रागभावः कस्मिन्कालेऽस्तीत्यत आह—उत्पत्तेरिति। कार्यस्योत्पत्तेः प्राक् स्वप्रतियोगिसमवायिकारणे वर्तत इत्यर्थः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(हिन्दी) जिसका आदि न हो पर अन्त हो तो उसे प्रागभाव कहते हैं। जैसे—घट आदि कार्य की उत्पत्ति के पहले का अभाव ।

सादिरनन्तः प्रध्वंसः । उत्पत्त्यनन्तरं कार्यस्य ।

(प०) ध्वंसं लक्षयति—सादिरिति । घटादिवारणाय अनन्त इति। आत्मादिवारणाय सादिरिति । उत्पत्तीति । कार्यस्योत्पत्त्यनन्तरं स्वप्रतियोगिसमवायिकारणवृत्तिरित्यर्थः । स च 'ध्वस्तः' इति प्रत्ययविषयः ।

(हिन्दी) जिस अभाव का आदि हो पर अन्त न हो उसको प्रध्वंसाभाव कहते हैं । जैसे—घट आदि कार्यकी उत्पत्ति के अनन्तर का अभाव ।

त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः । यथा भूतले घटो नास्तीति ।

(न्या०) अत्यन्ताभावं निरूपयति—त्रैकालिकेति । (प्रागभावाप्रतियोगित्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वे सत्यन्योन्याभावभिन्नत्वे सत्यभावत्वमत्यन्ताभावस्य लक्षणम् । ध्वंसप्रागभावान्योन्याभावाकाशादीनां वारणाय यथाक्रमं विशेषणोपादानम् । वस्तुतस्तु संसर्गाभावत्वं तादात्म्यभिन्नसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वम् । ध्वंसप्रागभावयोश्च न संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमिति तेनैव तद्वारणे त्रैकालिकेति स्वरूपाख्यानमेवेति बोध्यम् ।)

(प०) अत्यन्ताभावं लक्षयति—त्रैकालिकेति । त्रैकालिकत्वे सति संसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽत्यन्ताभावः । ध्वंसप्रागभाववारणाय त्रैकालिकेति । भेदवारणाय संसर्गेत्यादि ।

(हिन्दी) जिस अभाव की प्रतियोगिता संसर्ग से अवच्छिन्न हो और भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान तीनों काल में रहती हो उसको अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे—"भूतल में घट नहीं है" यह अभाव ।

तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽन्योन्याभावः । यथा घटः पटो नेति ।

(न्या०) अन्योन्याभावं निरूपयति—तादात्म्येति ।

(प०) अन्योन्याभावं लक्षयति—तादात्म्येति । प्रागभावप्रध्वंसाभाववारणाय तादात्म्येति । अत्यन्ताभाववारणाय तादात्म्यत्वेन संबन्धो विशेषणीयः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(हिन्दी) जिस अभाव की प्रतियोगिता तादात्म्य सम्बन्ध से अवच्छिन्न हो उस अभाव को अन्योन्याभाव कहते हैं। जैसे—घट, पट नहीं है।

सर्वेषां पदार्थानां यथायथमुक्तेष्वन्तर्भावात्सप्तैव पदार्था इति सिद्धम्।

कणादन्यायमतयोर्बालव्युत्पत्तिसिद्धये।
अन्नंभट्टेन विदुषा रचितस्तर्कसंग्रहः॥

इति श्रीमहामहोपाध्यायान्नंभट्टविरचितस्तर्कसंग्रहः समाप्तः।

(न्या०) ननु सादृश्यादीनामतिरिक्तपदार्थानामनिरूपणेन न्यूनतेत्यत आह। सर्वेषामिति। 'प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रह—स्थानानां तत्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः' इति न्यायस्यादिमसूत्र उक्तानां प्रमाणप्रमेयादीनामित्यर्थः। विस्तरस्त्वन्यत्रानुसंधेयः।

इति श्रीगोवर्धनविरचिता तर्कसंग्रहस्य न्यायबोधिनीव्याख्या समाप्ता।

(प०) पदार्थज्ञानस्य परमप्रयोजनं मोक्ष इत्यामनन्ति। स च आत्यन्तिकैकविंशतिदुःखध्वंसः। आत्यन्तिकत्वं च स्वसमानाधिकरणदुःखप्रागभावासमानकालीनत्वम्। दुःखध्वंसस्येदानीमपि सत्त्वेनास्मदादीनामपि मुक्तत्वापत्तिवारणाय कालीनान्तम्। मुक्त्यात्मकदुःखध्वंसस्यान्यदीयदुःखप्रागभावसमानकालीनत्वाद्रामदेवादीनां मुक्तात्मनामप्यमुक्तत्वप्रसंगात्स्वसमानाधिकरणेति प्रागभावविशेषणम्। दुःखानि चैकविंशतिः—शरीरं षडिन्द्रियाणि षड् विषयाः षड् बुद्धयः सुखं दुःखं चेति दुःखानुषङ्गित्वाच्छरीरादौ गौणदुःखत्वम्। तथाच 'आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति श्रुतेरात्मज्ञानसाधननिदिध्यासनमननसाधनत्वं पदार्थज्ञाने संजाघटीति। एवं च तत्त्वज्ञाने सति शरीरपुत्रादावात्मत्वस्वीयत्वाभिमानरूपमिथ्याज्ञानस्य नाशः। तेन दोषाभावः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेन प्रवृत्त्यनुत्पत्तिः । ततस्तत्कालीनशरीरेण कायव्यूहेन वा भोगतत्त्वज्ञानाभ्यां प्रारब्धकर्मणां नाशः । ततो जन्माभावः । 'नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् । ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन च पाचयेत् । अभ्यासात्पक्वविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः ।' इत्यादिवचनात् 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति' इति श्रुतेश्च सगुणोपासनाकाशीमरणादेरपि तत्त्वज्ञानद्वारा मुक्तिहेतुत्वम् । अत एव परमेश्वरः काश्यां तारकमुपदिशतीति सारम् ।

चक्रे चन्द्रजसिंहो हि पदकृत्यमिदं शुभम् ।
परोपकारकरणं माधवो वीक्षतामिदम् ॥

इति श्रीमत्तत्रभवद्गुरुदत्तसिंहशिष्यश्रीचन्द्रजसिंहविरचितं पदकृत्यं समाप्तम् ।

(हिन्दी) दर्शनशास्त्रों में कथित सभी पदार्थों का पूर्वकथित पदार्थों में ही अन्तर्भाव होने से सात ही पदार्थ हैं, यह सिद्ध हुआ ।

कणाद (वैशेषिक) और न्याय (गौतम) के मत में बालकों की व्युत्पत्ति की सिद्धि के लिये विद्वान् अन्नम्भट्ट ने यह तर्कसंग्रह बनाया ।

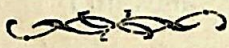

इति ※

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे यहाँ की प्रकाशित संस्कृत पुस्तकें

एक बार मँगाकर परीक्षा कीजिये ।

गणपतिपूजा	=)	जीवित पुत्रिका भा० टी०	।)
रुद्राष्टाध्यायी	।।।)	बटुकभैरवस्तोत्र	=)
संध्या और तर्पण	≡)	यज्ञोपवीत भाषाटीका	।।।=)
सन्तानगोपाल स्तोत्र	=)	ताजिक नीलकण्ठी भा.टी.	३)
गोपालसहस्रनाम	।=)	विवाहपद्धति भा० टी०	।।।=)
गोदान प्रयोग	=)	तर्कसंग्रह न्यायबोधिनी भा० टी०	१)
वासिष्ठीहवनपद्धति	।।।)	दुर्गापाठ ३२ पेजी साँची	।।=)
अनन्तव्रत कथा	।=)	दुर्गाकवच मोटा ३२ पेजी	≡)
ऋषिपञ्चमीव्रत कथा	।=)	गरुड पुराण भाषाटीका	३।)
स्वस्त्ययनकलशप्रतिष्ठा	=)	पार्थिवपूजन	´)।।
तर्पण सविधि	=)	वाल्मीकीरामायणसुन्दरकाण्ड मूल गुटका रेशमी	२)
दुर्गासप्तशती भा० टी०	।।)	बहुलाव्रतकथा भा० टी०	=)।
दुर्गासप्तशतीमूल १६पेजी	१।।)	प्रेतमञ्जरी भा० टी०	१=)
दुर्गासप्तशतीमूल ६४ पेजी	।।।)	पुरुषसूक्त और श्रीसूक्तग्लेज	≡)
सत्यनारायणव्रत कथा	।।)	हरतालिकाव्रतकथा भा०टी	।≡)
किरातार्जुनीय ३ सर्ग	।।।)	होड़ाचक्र भा० टी०	=)।।
मुहूर्त्तचिन्तामणि भा० टी०	३)	मनुस्मृति भा० टी०	५)
जातकालंकार भा० टी०	।।)		
ज्योतिषसार भा० टी०	१=)		

हर प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

बाबू ठाकुर प्रसाद गुप्त बुकसेलर,

राजादरवाजा, ब्रांच—कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

बम्बई प्रेस, राजादरवाजा, बनारस सिटी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi